UGC Approved Research Journal No. 47816
पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856
डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)
Peer Reviewed Bilingual Monthly International Research Journal
प्रेषण दिनांक 30
पृष्ठ संख्या 34

आश्वस्त

वर्ष 23, अंक 211, 212 (संयुक्तांक)
मई, जून 2021

नमो बुद्धाय

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 23 अंक 211, 212
मई–जून 2021

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव–लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9–बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन–456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	संत कबीर : सत्यान्वेषी एवं चिंतक	डॉ. प्रभु चौधरी	04
3.	कन्नड़ साहित्य में जातिवाद–विरोध	डॉ. दयानन्द बटोही	06
4.	ग्लोबल गांव के देवता उपन्यास में आदिवासी जीवन	प्रो. दिलीप मेहरा	08
5.	हिन्दी में अम्बेडकर जनसंचार	एड.गुरुप्रसाद मदन	12
6.	कविताएँ/ ग़ज़ल		15
7.	लघुकथाएँ		17
8.	अनुभूयमान अनुभूतियों का भोग्यमान दस्तावेज : 'मेरी इतनी सी बात सुनो' (पुस्तक समीक्षक)	डॉ. भूपेन्द्र हरदेनिया (समीक्षक)	20
9.	पत्र–पत्रिकाएँ इतिहास निर्माण करने वाला काम करती रही पर...	साक्षी गौतम	27
10.	समय के साथ चलते हुए	डॉ. दयानन्द बटोही	29
11.	बिखरे मोती (कहानी)	डॉ. विकास पाटील	31

UGC द्वारा मान्यता 47816 प्राप्त पत्रिका
खाते का नाम – आश्वस्त, खाते का नं.– 63040357829
बैंक – भारतीय स्टेट बैंक, शाखा– फ्रीगंज, उज्जैन
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 15/–
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 150/–
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 1,500/–
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 10,000/–

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक–मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

विश्व इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्ति का युग था। इस युग में विश्व के कोने–कोने में एक महान क्रान्ति हुई। मानव जिज्ञासा वृत्ति युगों के पूंजीभूत विश्वासों और सिद्धांतों की अभेद्य दीवार को तोड़कर प्रत्येक वस्तु की गहराई को अपनी सत्यान्वेषिणी दृष्टि से देखने के लिए तत्पर होने लगे। जीवन की गहनतम विषयों की समीक्षा तथा पुरातन कर्मकाण्ड एवं धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं में शाश्वत सत्य की खोज करने के लिए बुद्धि और तर्कशक्ति का सहारा लिया जाने लगा। इस प्रकार समस्त विश्व के चिंतकों, सुधारकों एवं धर्म प्रवृतकों ने तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था के विरोध में अपनी आवाज बुलंद की तथा धार्मिक–आध्यात्मिक विचारों पर गहन मनन और चिंतन किया जिसके परिणामस्वरूप अनेक परिवर्तन हुए तथा नवीन धर्मों का आविर्भाव हुआ। जिससे मनुष्य के जीवन की मान्यताओं का पुर्न मूल्यांकन हुआ।

भारत में बौद्ध धम्म भी इसी युगांतकारी परिवर्तन के फलस्वरूप प्रादुर्भूत हुआ। इसने भारत में ही नहीं बल्कि समस्त विश्व में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर भारतीय समाज एवं धार्मिक व्यवस्था में आये जातिगत भेदभाव, ब्राह्मणों की सर्वोपरिता, वेदों की अपौरुश्रेयता, ऊँच–नीच, घृणा–द्वेष, रक्तिम यज्ञ, हवन, कर्मकाण्ड, अव्यवहारिक बाह्याडम्बरों से युक्त अनुष्ठानों का खण्डन किया तथा मानव को एक सरल, सुबोध, सुसंस्कृत करुणा और मैत्री से परिपूर्ण व्यवहारिक एवं वैज्ञानिक धरातल पर खरा उतरनेवाला मानव धर्म विश्व को प्रदान किया।

बुद्ध के उपदेशों का मूल आधार मानव समाज था और उनके धम्म का केन्द्र बिन्दु भी मानव कल्याण था। उन्होंने मानव के कल्याण के लिये जो स्वस्थ पथ–प्रदर्शन किया वही बौद्ध धम्म कहलाया। उन्होंने दुःख और शोषण से पीड़ित लोगों को उससे मुक्त होने का मार्ग बताया, लेकिन कभी उन्होंने अपने को 'मुक्तिदाता' नहीं कहा। बुद्ध का धम्म 'मध्यम मार्गी' धम्म है।

मनुष्य के पास 'वजन' और 'दूरी' मापने का तो पैमाना है, लेकिन संसार में ऐसा कोई पैमाना नहीं है जिससे मनुष्य अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन को नाप सके, जिससे वह यह अनुभव कर सके कि कल की अपेक्षा आज उसने उन्नति की है या अवनति। निःसंदेह यदि कोई ऐसा पैमाना है तो वह है–'पंचशील' का पैमाना। तथागत बुद्ध ने सात्विक जीवन हेतु 'शील' पर विशेष जोर दिया जिसमें हिंसा से बचना, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना, कामवासना से दूर रहना और प्रमाद पैदा करने वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना शामिल है। इसे ही पंचशील कहा जाता है।

दिन–प्रतिदिन के सुखी, शांत जीवन के लिये जिन मूल्यों की आवश्यकता है उनका सुन्दर वर्णन महामानव बुद्ध ने महामंगल सूत्र में प्रस्तुत किया है। इस सूत्र में उन 38 कार्यों का उल्लेख मिलता है जिनको करने से गृहस्थों का मंगल होता है। उनमें से कुछ प्रमुख कर्म इस प्रकार है–अज्ञानियों की संगति न करना और विज्ञानियों की संगति करना, बहुश्रुत होना शिल्प कला सीखना, शिष्ट और सुशिक्षित होना, सुभाषण करना, माता–पिता की सेवा करना, पुत्र–पुत्री और पत्नी का पालन–पोषण करना, दान देना, निर्दोष कार्यों को करना, मद्यपान न करना, प्रमाद न करना, विनम्र होना, क्षमाशील होना, उचित समय पर सद्धर्म श्रवण करना, निःशोक रहना, निर्भय रहना और मन को निर्मल रखना आदि।

अविद्या, अन्धविश्वास मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। जितनी बड़ी हानि अपना स्वयं का अज्ञान करता है उतनी हानि कोई शत्रु भी नहीं कर सकता। अप्रमाद अमृत–पद है और प्रमाद सामने खड़ी मृत्यु के समान है। इसलिये गृहस्थों को अन्धविश्वास अपने पास नहीं आने देना चाहिए। क्रोध को अक्रोध से जीतो, बुराई को भलाई से जीतो, कंजूस को अधिक दान देकर जीतो और झूठ बोलने वाले को सत्य–वचन से जीतो।

भवतु सब्ब मंगलम्।

– डॉ. तारा परमार

संत कबीर : सत्यान्वेषी एवं चिंतक

– डॉ. प्रभु चौधरी

संत कबीर उच्च कोटि के साधक, कर्मयोगी एवं कवि थे। सामाजिक राजनैतिक–धार्मिक रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों का सामना करना तथा मानव एकता की स्थापना करना कबीर के काव्य का प्रमुख उद्देश्य रहा है। यों तो कबीर की रचनाओं के बारे में मध्यकालीन अन्य संत कवियों की तरह कुछ स्पष्ट नहीं कहा जाता । लेकिन साखी, शबद और रमैनी उनके प्रमाणिक ग्रंथ है। कोई भी रचनाकार अपने समय के सामाजिक परिवेश से निर्मित होता है। कबीर का अवतरण राजनैतिक–धार्मिक–सामाजिक अस्थिरता के समय हुआ।

कबीर ने अपनी वाणी में सामाजिक विचारों, जन–मानस की आवाज को निर्भीक भाव से मुखरित किया है, क्योंकि स्वभावतः वे फक्कड़ थे। सुख–दुःख, हर्ष शोक, मान–अपमान से कार्य अप्रभावित रहे है। कबीर ने समाज के परिवार–वृत्त अथवा परिवारेत्तर संबंधो के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। यदि इन संबधो के बारे में उल्लेख हुआ है तो उन्हें अनित्य, अवास्तविक तथा भ्रम मात्र कहा है। इसीलिए तो कबीर की प्रासंगिकता को लेकर विवाद किया है जो संसार को नस्वर मानता हो, मिथ्या मानता हो वह सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक कैसे हो सकता है ? लेकिन यह सोचनीय है कि आज भी भारतीय जनता कबीर तथा मध्यकालीन अन्य संतों की वाणी को, विचार को सर आंखों पर रखता है। बुद्धिजीवी समाज भी उन संतो के स्वर को दोहराता है। कर्मकांड को नकारने वाला कबीर क्या आज के जटाधारी भक्तों के लिए प्रासंगिक नहीं है ? अन्ततोगत्वा पंद्रहवीं शताब्दी के संत कबीर की वाणी में ऐसा क्या है जो आज के भौतिकवादी समाज के लिए उपयोगी है। ऐसे अनेक सवाल है जिनसे हम कबीर की प्रासंगिकता को स्वीकार करते है। खासकर आधुनिक भावबोध के सन्दर्भ में तो उन्हें सबसे अधिक प्रासंगिक पाया गया है।

हम अच्छी तरह जानते है कि मध्ययुगीन भारतीय समाज हिन्दू और मुसलमान दो भागों में बंटा हुआ था। दोनो में धार्मिक कट्टरवाद था। वे एक दूसरे को हीन समझते थें धर्म के नाम पर, जात–पात पर भी खाई खोदने वालो की कमी नही थी। कबीर को ऐसे लोगों से सख्त नफरत थी। सामाजिक–धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों के प्रति अपने तरीके से वे उपयोगी और प्रासंगिक सुधारक के रूप में हमारे सामने आते है।

कबीर हिन्दू–मुसलमान को इस देश का अंग मानते है। हिन्दू हो या मुसलमान, दूसरों को बलपूर्वक अपने विश्वासों के अनुरूप ढालने की कोशिश कर रहा है। यह सरासर अत्याचार है। ऐसी मानसिकता के लिए कबीर का विचार आज भी प्रासंगिक है। कबीर का काव्य इसीलिए प्रासंगिक है कि वह जातिवाद और साम्प्रदायिकता जैसी अमानवीय समाज व्यवस्था के खिलाफ है। कबीर का काव्य आदमी के खिलाफ आदमी की हिकारत का दरवाजा बंद करता हैं । सांप्रदायिक समस्या, मूलतः हिन्दू–मुस्लिम एकता की समस्या को सुलझाने की अब तक अथक चेष्टा भी की है। कबीर का काव्य सांप्रदायिक सहिष्णुता के भाव से इतना परिपूर्ण है कि वह हमारे लिए आज भी पथप्रदर्शक का आकाशदीप बना हुआ है। धार्मिक एकता पर आज बहुत अधिक बल दिया जा रहा है। कबीर ने हिन्दू–मुसलमान दोनों की साधना पद्धति को खूब फटकारा है। देखिए :

मोको कहाँ ढूंढें बंदे, मैं तो तेरे पास में,
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलाश में,
खोजी होय तो तुरतै मिलियो पल भर की तलाश में,
कहे कबीर सुनो भाई साधौ, सब श्वासों की साँस में।।

हिन्दू मूए राम कहि, मुसलमान खुदाई।
कह कबीर सो जीवता, दुह मैं कदै न जाई ।।

इस तरह कबीर की वाणी का अभ्यास करने पर

कह सकते हैं कि उन्होने कदम–कदम पर हिन्दू–मुसलमान दोनों को जांत–पात और बल–प्रयोग को आड़े हाथों लिया है। रवीन्द्र कुमारसिंह ने कहा है कि आज के उपदेशक भी गला फाड़–फाड़कर हिन्दू–मुसलमान एकता पर चिल्लाते हैं, परन्तु ऐसा समाधान नहीं देते, जिनसे यह समस्या सुलझ जाए। किन्तु कबीर के पास इसका समाधान है जो कि उनकी वाणियों में उपलब्ध है।

कबीर कहते है कि मूलतः राम तो सर्वव्याप्त, सनातन, अविनाशी, अगोचर है। वह तो अणु–अणु में परिव्याप्त है। उसकी सत्ता सबसे अलग है। जिससे यह संसार बनता है, बिगड़ता है और मिटता है। वह जीवात्मा का उद्धारक है। एक साखी में व्यक्त है :

यह तन काचा कुंभ है, चोट चहुँ दिसि खाई।।

एक राम कै नावं के बिन, जदि तदि परले जाई।।

मध्यकालीन युग में भी लोग सम्पत्ति और सत्ता को सुख का प्रतीक मानते थे। वे छल–कपट और अन्याय–अत्याचार से सत्ता एवं सम्पत्ति हथियाने में लगे रहते थे। सम्पत्ति तथा सत्ता का विस्तार ही उनका चरम लक्ष्य था। उन्हें प्राप्त करते ही लोग अहंकारी हो जाते थे। उनमें अनेक प्रकार की दुर्वत्तियाँ प्रवेश करती थी। ये लोग भूल जाते थे कि आखिर एक दिन मरना ही है। तब इस सम्पत्ति का उसके लिए कोई मूल्य नहीं रहने वाला। कबीर का सांसारिक माया का वर्णन मात्र ज्ञान चर्चा नहीं है और न दार्शनिक विचार, वरन् इसमें असारता का अनुभव अभिव्यक्त हुआ है।

कबीर ने कहा है :

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर।

आसा त्रिष्ना नां मुई, कह गया संत कबीर ।।

कबीर की वाणी में माया सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक जैसे अनेक रूपों में उभरी है। उनकी वाणी दर्शन मात्र नहीं है, जीवन जगत के अपने अनुभव को, निरीक्षण को उन्होंने वाणी दी है। कुछ भी हो, कबीर की वाणी से सामाजिक जीवन के उच्च और काम्य पक्षों को ही बल मिला है। कहा जा सकता है कि संत कबीर के काव्य के सामाजिक आयाम उनके वैयक्तिक तथा मतवादी आयामों की अपेक्षा अधिक समाजोन्मुखी, अधिक प्रासंगिक और अधिक प्रतिबद्ध है तथा लोक जागरण की मध्यकालीन धारा के अनुकूल होने के कारण अधिक प्रभाव वहन करने में सक्षम है। समाज के बारे में कबीर ने जिन सूत्रों का निर्माण किया है वे सर्वकालिक है। इनके सामाजिक सुधार संबंधी प्रयोग मध्य युग में जितने रहे, अब भी उतने ही ग्राह्य और अनुकरणीय है। वर्तमान युग में कबीर को लेकर जो चर्चाएँ चल रही है उन सबका लक्ष्य कबीर के व्यवहार का महत्व प्रतिपादित करना है। सामाजिकता और मानव मूल्यों के निर्धारण में कबीर का प्रदेय निश्चित ही पर्याप्त महत्वपूर्ण है।

कबीर की प्रासंगिकता का सवाल समसामयिक सार्थकता तक ही समाप्त नहीं हो जाता। आज की समाज व्यवस्था को परम्परामुक्त तर्कसंगत स्वरूप देने के लिए जितने संघर्ष आयोजित होंगे, उनसे भी कबीर का सम्बन्ध बनता है। प्रत्येक मनुष्य को हर तरह से मुक्त करने की लड़ाई जब तक चलती रहेगी, कबीर तब तक प्रासंगिक बने रहेंगे। उनकी वाणी में पिरोया गया अनुभवजन्य सत्य युगों तक जनमान्य रहेगा। क्योंकि उनके विचार मानव–मुक्ति के पथ पर अग्रसर समाज के लिए समानता और भाईचारे की भावना का संबल प्रदान करते है। कबीर ऐसा लोक नेता है जो सिर्फ भाषा–कवि अथवा धर्म गुरू की सीमा तक सीमित न होते हुए सामाजिक संदर्भ, सामाजिक संगति, सामाजिक उपयोगिता को लेकर जीवन का आश्वासन देता है। यों तो कबीर के जीवन का महत्वपूर्ण अंग न सिर्फ भक्ति और दर्शन है, उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि वन्दनीय, सराहनीय है, वर्तमान प्रासंगिक है। निशंक, प्रासंगिकता को लेकर भारत भूमि पर तेजस्वी संत कवियों की नक्षत्र माला में कबीर भी प्रकाशपुंज है।

महिदपुर रोड, जिला उज्जैन–456440
मोबा. 98930 72718

कन्नड़ साहित्य में जातिवाद–विरोध

– डॉ. दयानन्द बटोही

भारतीय भाषाओं में मराठी और कन्नड़ ऐसी दो भाषाएं हैं, जिनमें जातिवाद के विरोध में दलित साहित्य की एक धारा ही रही है। इसमें दलितों द्वारा रचे गए साहित्य के विविध आयाम रहे हैं। ब्राह्मणवाद का विरोध, चार वर्णों की व्यवस्था का विरोध, अस्पृश्यता का विरोध इस साहित्य की विशेषताएं हैं। दलितों ने सवर्णों का बड़ा उग्र विरोध किया है, उनके समाज की बुराइयों का पर्दाफाश किया है। कहीं–कहीं यह विरोध निरा विरोध न रह कर, बहुत हिंसात्मक और उग्र भी हो उठा है।

परवर्ती दलित साहित्य का यह हाल है कि उसमें सवर्ण भी शामिल हो गए। यह आंदोलन एक फैशन बन गया।

दरअसल जातिवाद–विरोधी दलित साहित्य को कन्नड़ में 'बडाया आदोलन' का एक अंग मान लिया गया है। 'बडाया आंदोलन' मौलिक परिवर्तन के लिए. आंदोलन रहा है। इसमें चंद्रशेखर पाटिल, पी. लंकेश, देवनुर महादेवन, बी. कृष्णप्पा आदि वामपंथी सोच के लेखक रहे हैं। इन्होंने पहली बार लेखकों और कलाकारों का संघ बनाया।

आधुनिक कन्नड़ साहित्य का एक विहंगम दृष्टि से सर्वेक्षण किया जाए तो हम पाएंगें कि इसमें जो उतार–चढ़ाव, परिवर्तन आए हैं, उनका अन्य भारतीय भाषाओं से एक मेल एवं तादात्मय रहा है। कन्नड़ का सन् 1900 से 1940 तक का साहित्य नव्योदय साहित्य कहलाता है। 40 के दशक से लेकर 50 के दशक के उत्तरार्द्ध तक के साहित्य को 'प्रगति पंथ' का साहित्य कहा गया है। है। 60 के दशक के प्रारंभ से 70 के दशक के मध्य तक नव्य साहित्य का युग है। 70 के दशक के मध्य से कन्नड़ में परिवर्तनकामी क्रांतिकारी 'बंडाया आंदोलन' की शुरूआत होती है।

जातिवाद एवं अन्य सामाजिक बुराइयों का विरोध कन्नड़ साहित्य की कोई अचानक घटना नहीं है। शुरुआती दौर के नव्योदय धारा के लेखकों में भी इसके बीज छिपे हुए थे। एक तरह से पारंपरिक कन्नड़ साहित्य से आधुनिक कन्नड़ साहित्य में ही संक्रमण के दौर में ही परवर्ती आंदोलनों की भूमि तैयार हो चुकी थी।

नव्य धारा के लेखकों ने अपने समय के समाज को बुराइयों और साहित्य के सामाजिक सरोकार की उपेक्षा करते हुए, एक तरह के बुद्धिविलास और आत्मकेंद्रित लेखन को ही साहित्यिक कर्म के रूप में स्वीकृति दी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के यूरोपीय लेखकों की तरह ये लेखक भी 'एलिएनेशन' के शिकार दिखते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के यूरोपीय लेखकों के 'एलिएनेशन' के कारण युद्धोत्तर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों में ढूंढ़े जा सकते हैं। लेकिन नव्य धारा के कन्नड़ लेखक शौकिया अकेलापन के शिकार थे। उनका साहित्य साधारण पाठक से कटता गया।

यहीं से जनता से जुड़े समाजवादी एवं वामपंथी सोच के लेखन की शुरुआत हुई। इसे कन्नड़ साहित्य में 'वंडाया आंदोलन' कहा गया। दलित साहित्य इसका एक अंग है । दलित साहित्य का एक हिस्सा तो वह है जो स्वयं दलित लेखकों द्वारा लिखा गया है। यह बड़ा ही जीवंत साहित्य है।

'बंडाया–साहित्य का मुख्य उद्देश्य सामाजिक बुराइयों, अन्याय, उत्पीड़न व शोषण के खिलाफ लोगों को जागरूक बनाना था। उसमें समाज में गरीबों, दलितों, एवं स्त्रियों के शोपण के खिलाफ आवाज बुलंद की गई। 'बंडाया आंदोलन' के अधिकांश लेखक वामपंथी सोच से प्रभावित हैं या लोहिया और अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित हैं। इन सभी लेखकों ने सामाजिक बराबरी के लिए लड़ाई जारी रखने की बात की है।

शुरु के दलित लेखक अनुसूचित जाति, जनजाति अथवा पारंपरिक समाज के अन्य तयाकथित तबकों से

आए थे। स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलितों के लिए शिक्षा की सुविधाएं, अम्बेडकर के विचारों के प्रभाव, अमेरिका के ब्लैक पेंथर आंदोलन के प्रभाव आदि से भारतीय समाज में दलितों में एवं दलितों पर एक नए ढंग से सोचने की शुरुआत हुई। दलितों के लिए लड़ने के लिए गठित संस्था 'दलित संघर्ष समिति' दलित लेखकों का मंच बन गई। इस समय के लेखकों द्वारा दलितों के लिए गीत रचे और गाए जाने लगे। दलितों के उन्नयन के लिए प्रयासरत सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी इन गीतों से काफी उत्साह मिला।

सिद्धलिंगैया की कविताएं दलितों की भाषा में ही पूरे समाज से मुखातिब होती हैं। सिद्धलिंगया आदि दलित कवियों की कविताओं में लोक गीतों एवं लोक धुनों की चीजें मिलती हैं।

इन गीतों में कहा गया है कि जो हमारा शोषण कर रहे हैं, जिन्होंने हमें निम्न वर्ण का कहकर सदियों से हमारा शोषण किया है, आओ, हम सब मिलकर उन्हें लात से ठोकर मारें, उन्हें मिलकर पीटें एवं उनके चमड़े उतार लें। इन गीतों में सदियों से शोषण, अत्याचार एवं अपमान की चक्की में पिसते रहने की पीड़ा से उपजा विद्रोह है। अपने उन्नयन के लिए आवाज बुलंद करने और दलितों को एकताबर करने में इन गीतों की काफी महत्वपूर्ण भूमिका है।

सत्तर के दशक के अंत में दलितों के लिए लिखनेवाले लेखक बहुत अधिक संख्या में नहीं थे। उस समय यह मामला आंदोलन नहीं बन पाया था । चूंकि बंडाया लेखकों एवं दलित लेखकों का उद्देश्य एक ही था–उत्पीड़न के खिलाफ आवाज बुलंद करना, अतः दलित साहित्य बंडाया साहित्य का ही एक अंग बन गया।

दरअसल देवनुर महादेवा, सिद्धलिंगैया, वी. कृष्णप्पा, रामचन्द्र रेक और कुछ अन्य दलित लेखकों ने ही 'बंडाया आंदोलन' की नींव रखी थी। बंडाया लेखक समाज में मौलिक परिवर्तन लाने की बात करनेवाले लेखक थे और हर तरह के शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद कर रहे थे, जबकि दलित लेखकों का साहित्य वर्ण–व्यवस्था के विरोध तक ही सीमित था। पर दलित साहित्य का आशय अपने आप में बहुत सीमित रहते हुए भी, समय की जरूरत था । उनका मुख्य उद्देश्य संवर्णों के अत्याचार एवं शोषण–उत्पीड़न के खिलाफ अपना क्रोध व्यक्त करना था। लेकिन इस जातिवाद–विरोधी साहित्य का एक और महत्वपूर्ण आयाम भी था, इसमें दलितों ने अपनी उन भावनाओं, प्रेम–संबंधों, मजाकों और रीतियों–परंपराओं को भी व्यक्त किया, जिनके लिए साहित्य में अब तक कोई स्थान नहीं था। किसी कथा के नायक का दलित होना ना साहित्य में नई घटना थी, जो अब तक न ही सह्य थी, न प्रिय और न ही स्वीकृत। दलित लेखक गंबई शब्दों के प्रयोग के आग्रही थे एवं शब्दों के अभिजात संस्कार से उन्हें चिड़ थी। सिद्धिलिंगैया की दो कविता पुस्तकों 'साबिरारू न दिगलु' (हजारों नदियां) और चप्पु काडिन हाडू' (काले जंगल के गीत) को दलित साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में गिना जाता है। एक जगह सिद्धलिंगैया लिखते है –

प्रिये, चांदनी रात में
सुनसान पहाड़ी पर
तुम अकेले मत घूमो।
तुम्हारे चमेली जैसे कोमल शरीर को
पूर्ण चंद्र की चंद्रिका
कहीं जला न दे।

वहीं एक दूसरी कविता में वह कहते हैं –

हमें अपने पेट से धधकता हुआ
कोयला निकालकर फेंक देना चाहिए
उत्पीड़ित करनेवाले सवर्णों पर

एक अन्य कविता को पंक्तियां हैं –

ये सवर्ण
उन कुत्तों को अपने रसोईघर में
जाने दे सकते हैं
जो हमारा गू खाकर पलते हैं
लेकिन हम दलितों को
अपने घर के पास भी
फटकने नहीं देते।

देवनुर महादेवा की 'ओडालटा' (पेट की आग) और 'कुसुम बाले' में जातिवाद का विरोध, सवर्णों के प्रति घृणा एवं क्रोध एवं गंवई भाषा का बड़ा ही सफल सशक्त प्रयोग है। एक दलित लेखक ने भगवद्गीता में आए कृष्ण के संवाद 'चातुर्वण्यं मया सृष्टं' (चारों वर्ण मेरे द्वारा रचे हुए हैं) पर आपत्ति करते हुए लिखा है कि इस पुस्तक ने पवित्र एव महान भारत भूमि पर अपने विचारों का गू बिखेर दिया है। इधर उच्च वर्गों का दलितों के प्रति रुख बदला है। पढ़े–लिखे लोगों में एक उदारवादी वर्ग उभरकर आया है, जो दलित लेखकों के साथ मिलकर समाज से जातिवाद का कोढ़ दूर करने का पान कर रहा है।

साहित्य यात्रा (नई लहर)
ई.जी.–8, चन्द्रपुरा, बोकारो–828403 (झारखण्ड)
मोबा. 9955437549

ग्लोबल गाँव के देवता उपन्यास में आदिवासी जीवन

– दिलीप मेहरा

'हर एक सड़क पे हो रहा है इंसानीयत का कत्ल
पूरे शहर में फिर भी कोई सनसनी नहीं।'

ग्लोबल गांव के देवता (2009) उपन्यास के लेखक रणेंद्र जी हैं । इस उपन्यास की पृष्ठ संख्या मात्र 100 है। उपन्यास का कथाक्षेत्र झारखंड का आदिवासी क्षेत्र है। ग्लोबल गांव के देवता उनको कहा जाता है जो आदिवासियों का शोषण करते हैं । इस उपन्यास की कथा का प्रारंभ एक नवयुवक की नियुक्ति से होता है। युवक की नियुक्ति उसके गाँव से ढाई तीन सौ किलोमीटर दूर बरवे जिले के कोयला वीघा भोरापाट के पी.टी. रेजिडेशियल स्कूल में होती है। वह शिक्षक आदिवासी क्षेत्र में नौकरी करना चाहता नहीं था। कारण आदिवासियों की कल्पना उसके मन में किसी भयानक दैत्य जैसे आकार के मनुष्य के रूप में थी। इसलिए वह आना ही नहीं चाहता था। फिर भी वह इस आशा से आता है कि किसी भी तरह कुछ समय में वह वहां से तबादला करा लेगा। इस क्षेत्र में आकर इस अध्यापक का परिचय अत्यंत पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों से होता है जो वास्तव में दैत्य नहीं बल्कि पूंजी वादियों द्वारा सताए हुए गरीब अभावग्रस्त आदिवासी हैं।

प्रारंभ में इस शिक्षक का परिचय लालचंद नामक असुर से होता है। इस व्यक्ति को देखकर विज्ञान शिक्षक चकित हो जाता है । क्योंकि असुरों के बारे में उनकी धाराणा थी कि खूब लंबे – चौड़े, काले – कलूटे, भयानक, दांत – वांत निकले हुए, माथे पर सींग – वींग लगे हुए होंगे लेकिन लालचंद को देखकर सब कुछ उलट–पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियां उलटी घूम रही थी।[1]

उपन्यास असुरों से संबंधित बनी रूप–रंग एवं व्यवहार की गलत धारणाओं या मान्यताओं को तोड़ने का कार्य करता है। साथ–साथ असुर जनजाति के आदर्श मानवीय छवि को उजागर करने का प्रयास रणेंद्र जी ने किया है।

रणेंद्र ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से असुर जाति को समाज की मुख्यधारा में लाने की बात करके किस प्रकार उनका शोषण किया जाता है, उसका यथार्थ वर्णन किया है। आदिवासियों की जमीन हथियाकर उस में खनन किया जाता है। असुरों की जमीन में से बाक्साइट निकालकर जमीन में हुए गड्ढे असुरों को मरने के लिए छोड़ दिये जाते है । अतः गड्ढों में पानी जमा होता है, जिसमें आदिवासी मलेरिया, डायरिया जैसी बीमारियों के शिकार होते है। लेखक के शब्दों में "छोटी बड़ी सभी खदान मालिकों का एक ही रवैया। लीज की भूमि पर कम, वन विभाग गैरमजरूआ जमीन, असुर रैयत की जमीन पर ज्यादा खनन किया करते। अवैध खनन खुलेआम और वर्षों से जारी था।"[2]

खनन करने वाली कंपनियां आदिवासियों की जमीन से जितना फायदा उठाती है, उसमें से एक रुपए का फायदा आदिवासियों को नहीं कराते थे। ग्लोबल

गांव के देवता' उपन्यास में लेखक ने दो देवताओं की बात की है। पहला देवता विदेशी वेदांग कंपनी और दूसरा देवता है टाटा। इन देवताओं ने आदिवासियों को बेकार कर दिया है। नयी औद्योगिक नीतियों–रीतियों ने आदिवासियों की कमर तोड़ दी। इस ओर संकेत करते हुए रणेंद्र लिखते हैं–'बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा–कहानी वाले सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कम्पनियों ने हमारा नाश किया। उनकी फैक्टरियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैंता, खन्ती सुदूर हाटों तक पहुँच गये। हमारे गलाये लोहे के औजारों की पूछ खत्म हो गयी। लोहा गलाने का हजारों हजार साल का हमारा हुनर धीरे–धीरे खत्म हो गया। मजबूरन पाट देवता की छाती पर हल चलाकर हमने खेती शुरू की। किन्तु बाक्साइट के वैध–अवैध खदान, विशालकाय अजगर की तरह हमारी जमीन को निगलता बढ़ता आ रहा है।'[3]

आदिवासियों के लिए शिक्षा के नाम पर कई स्कूल, कॉलेज तो खोला जाता है लेकिन उसमें एक भी आदिवासी को न तो नौकरी पर रखा जाता है न आदिवासी छात्रों को पढ़ाया जाता है। स्कूल के नाम पर आदिवासियों की जमीने हड़प ली जाती है। इस ओर संकेत करते हुए रुमझुम असुर भावुक होकर मास्टर को कहता है–'असुरों के सौ से भी ज्यादा घरों को उजाड़कर बना था यह स्कूल अभी भी आस–पास असुर आबादी है। ज्यादा दूर नहीं बीस बाईस किलोमीटर के दायरे में लगभग सारी की सारी असुर विरिजिया, कोरबा आदिवासी बसती है। पिछले तीस वर्षों का रजिस्टर उठाकर देख लीजिए जो एक भी आदिम जाति परिवार के बच्चे ने इस स्कूल में पढ़ाई की हो तो..। मैंने खुद कितनी कोशिश की थी। पिछले दो–तीन वर्षों से कैजुअल शिक्षक के रूप में काम करने की इच्छा है। लेकिन वहाँ भी दाल नहीं गलती। आखिर हमारी छाया से भी क्यों चिढ़ते हैं ये लोग? मांड़–भात खिलाकर, अधपढ़, अनपढ़ शिक्षकों के भरोसे, फुसलवान स्कूल के हमारे बच्चे ज्यादा से ज्यादा स्किल्ड लेबर, पिउन, क्लर्क बनेंगे और क्या हमारी औकात है। हमारी छाती पर ताजमहाल जैसा स्कूल खड़ा कर हमारी हैसियत समझाना चाहते हैं लोग..।'[4]

इस उपन्यास का रुमझुम असुर पढ़ा लिखा आदिवासी युवक है। वह पाथरपाट स्कूल में काम करना चाहता है, लेकिन उसका सपना पूरा नहीं होता। कारण यही है कि, एक असुर को शिक्षक के पद पर देखना अभिजन समाज को पसंद नहीं आयेगा । उनको तो रोड पर मजदूरी करते या गुलामी करते आदिवासी ही पसंद आते हैं। रूमझुम असुर की जब कठिन मेहनत और संघर्ष के बाद मैन्स कंपनी में नौकरी लगती है, वहाँ से भी इसे निकाल देने के पैंतरे प्रारंभ हो जाते हैं।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में रणेन्द्र ने समाज में स्त्री की हिस्सेदारी के साथ–साथ स्त्री के शोषण का भी आंकलन किया है। आदिवासियों की बहन बेटियों का बलात्कार करना आम बात थी। पूंजीवादियों की इस घिनौनी हरकत का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है–'गोनुआ रखनियों की जवान बेटियों का भी भरपूर इस्तेमाल करता। किसको थाने के बाबू से हटाना है, किसको वीडीओ साहब के लिए बचाना है और कौन विधायकजी के नाइट हाल्ट में गोड़ दबाएगी सबका हिसाब किताब बुढ़वा रखता है।'[5]

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और सरकार ने मिलकर आदिवासियों की जमीन तथा उन लोगों के जीवन को तहस–नहस कर दिया है। आदिवासी अपनी जमीन से विस्थापित हो रहे हैं। आदिवासियों के विस्थापन का सीधा फायदा कंपनियों को हो रहा है। इससे वे बिना रुकावट और संघर्ष के बिना बाक्साइट निकाल लेते है । अगर कोई आदिवासी इसके लिए आवाज उठाता तो उसको नक्सलवादी कहकर मौत के घाट उतार दिया जाता है। ऐसे में आदिवासी क्या करें? उपन्यास का असुर पात्र रुमझुम अपनी इसी पीड़ा का दर्द प्रधान मंत्री को करता नजर आता है–'हमारी बेटियाँ और हमारी

भूमि हमारे हाथों से निकलती जा रही है। हम यहाँ से कहाँ जाएँगे।[6]

विकास के नाम पर आदिवासियों को फुसलाया जाता है। उनकी जमीन में अवैध खनन किया जाता है। बाक्साइट निकालकर मौत की खाईयाँ बनाई जा रही है। इन सब का विरोध आदिवासियों को करना पड़ेगा। लेखक के शब्दों में अवैध खनन के लिए पाँच–दस असुरों को रोज फुसलाया जाता है। हर उपाय से उनकी जमीन हथियायी जाती है। बाक्साइट निकाल निकालकर मौत की खाईयाँ छोड़ी जा रही है। इन सब सवालों को जोड़िये, तभी असुरों के साथ उरांव, खेरवार, सदान आपकी लड़ाई में जुटेंगे।[7]

आदिवासियों की इस स्थिति पर मैनेजर पांडेय जी का कथन उल्लेखनीय है–'वर्तमान समय में भारत के आदिवासी समुदायों के सामने पहला खतरा उन्मूलन का है और दूसरा अनुकूलन का।'[8]

'ग्लोबल गाँव के देवता' के आदिवासी बिरसा मुंडा की तरह अपने अधिकार के लिए एकजुट होकर चुनौती देते नजर आते हैं। इसका वर्णन करते हुए रणेंद्र जी लिखते हैं–'जमीन हत्या की जांच और प्रखंड अंचल आफिस की बन्दी तक तो बात घर की थी, किन्तु पूरे पाट के तीस–चालीस खदानों में काम रुकवाकर उन्होंने सीधे नये देवता को चुनौती दे दी थी। नयका देवता आकाशधारी और ग्लोबल गांव के वासी थे। उनमें गजब की एकता थी। खदानों की सात दिनों की बंदी और सशस्त्र बल की वापसी से ग्लोबल गांव के देवताओं में खलबली सी मच गई।'[9]

आदिवासी जहाँ रहते हैं वहाँ खदान मालिक अवैध खनन करवाते हैं। वे लोग आदिवासियों को तो मूर्ख बनाते हैं साथ साथ भारत सरकार को भी मूर्ख बनाते हैं।

ग्लोबल विलेज के चक्कर में आदिवासियों का शोषण और अधिक बढ़ जाता है। सारा विश्व एक गाँव बनने के कारण भारत की प्राकृतिक सम्पदा को लूटने की खुली छूट विविध कंपनियों और पूँजीपतियों को मिल जाती है। राष्ट्र, राज्य और गाँव के देवता मिलकर तो ये देवता और अधिक लालची तथा खतरनाक बन जाते हैं। इस उपन्यास के रुमझुम लालचन, कनारी नवयुवक संघ भीखा, डॉ. रामकुमार वर्मा, सोमा तथा विज्ञान शिक्षक आदि मिलकर इनके विरोध में जुलूस तक निकालते हैं। पर पाट की चालीस से भी अधिक खदानों में सात दिन तक काम रुक जाता है। गांव में सशस्त्रदल को बुलाया जाता है, पर असुर महिलाओं के द्वारा उसे भगाया जाता है। ऐसे में शिंडाल्को कंपनी का मैनेजर किशन कन्हैया पाण्डे अनेक कूटनीतियों को अपनाकर इस आन्दोलन तोड़ने में सफल होता है। कनारी नवयुवक संघ भी किसी कारणवश इस आन्दोलन से हाथ खींच लेता है अतः रुमझुम लालचन, कनारी नवयुवक संघ, भीखा, डॉ. रामकुमार वर्मा, सोमा जैसे अनेक असुरों को पुलिस गिरफ्तार करती है। असुरों की जमीन–जायदाद, इज्जत दाव पर लग जाती है। इन लोगों को कोयलाभ्रम के शिवदास बाबा असुरों की जमानत करवाते हैं। इसी शिवदास बाबा ने बाद में असुरों के साथ धोखाधड़ी कर उनके पशुओं को हथिया लिया।

इस प्रकार आज हम देख सकते हैं कि आदिवासी अनेक मुसीबतों का सामना करते नजर आते हैं। उनके आगे भी खाई पीछे भी खाई, जाए तो जाए कहाँ बैचारे।

भारत में स्त्री सदियों से संघर्ष करती आयी है। हर समाज में स्त्री की दशा दयनीय होती है। रणेंद्र ने भी आदिवासी नारी के शोषण, संघर्ष के साथ–साथ स्त्री की हिस्सेदारी का वर्णन किया है। यथा–'कभी–कभी लगता, यह धरती, सूरज, चाँद, सितारे, कई–कई सूरज, कई–कई चाँद, हमारा पूरा ब्रह्मांड हमारी अपनी आकाशगंगा और पूरी कायनात की लाखों–करोडों आकाशगंगाओं के अनन्त ब्रह्मांड, सबके सब किसी स्त्री की हथेलियों से घुमेर लेकर आदि अनन्त काल से नाचते जा रहे हैं। इस अलौकिक नाच पर भी एक स्त्री की ही घूमती हथेलियों की छाप है।'[10]

बुधनी प्रस्तुत उपन्यास की सशक्त स्त्री पात्र है। वह अपने मंदबुद्धी पति एवं बच्चों के पालन पोषण के लिए काफी संघर्ष करती है। बुधनी झारखंड से भूटान जाकर मेहनत करती है। जब वहाँ दंगा फसाद होता है तो वह झारखंड वापस आ जाती है और जीवन जीने की कला भी सीख लेती है। समय आने पर वह चाय की दुकान भी खोलती है। इस उपन्यास में स्त्रियों के शोषण करने वाले शिवदास बाबा, रामचरन सिंह आदि का पर्दाफाश किया है। ऐसे लोग हर जगह हर समाज में मिल जायेंगे।

उपन्यास के अन्त में लेखक ने दर्शाया है कि आदिवासियों के अस्तित्व के लिए लड़ रहे आदिवासियों को गोलियों का शिकार होना पड़ता है। शांति से अनशन कर रहे आदिवासियों को पहले तो पुलिस भड़काती है। इसमें छः असुरों को गोली मारकर हत्या की जाती है। इस हत्याकांड को पुलिस नक्सली बताकर पल्ला झाड़ लेती है। इतना ही नहीं वेदांग कंपनी और पुलिस से बातचीत के लिए जानेललित, बुधनी दी, गन्दूर एतवारी, लालचन दा के बाबा के साथ अन्य पंद्रह लोगों को लैंड माइंस बिछाकर मौत के घाट उतार दिया जाता है। इस घटना से सारे ग्लोबल गाँव के देवता खुशहाल हो जाते हैं। यथा–'जो लड़ाई वैदिक युग में शुरू हुई थी, हजार हजार इन्द्र जिसे अंजाम नहीं दे सके थे, ग्लोबल गांव के देवताओं ने वह मुकाम पा लिया था।'[11]

प्रस्तुत उपन्यास का कद भले ही छोटा हो पर लेखक ने आदिवासी जीवन की सभी समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है। इसलिए खगेन्द्र ठाकुर इस उपन्यास के बारे में ठीक ही लिखते हैं–'इस तरह यह उपन्यास छोटे कलेवर में भी राष्ट्रीयता, जनतंत्र और जनता पर आ रहे भयानक खतरे को व्यक्त करता है।'[12]

ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास का शीर्षक ही प्रतीकात्मक है। ग्लोबल गांव के देवता शोषणखोर पूँजीवादी तथा शोषणखोर विदेशी कंपनी के मालिकों का प्रतीक है। आदिवासियों के साथ वर्षों से अन्याय किया जाता है। उनको अशिक्षित रखने का प्रयास किया जाता है। उनके लिए सरकार योजनाएँ तो अनेक लाती है, पर वे योजनाओं का लाभ कितना ले पाते हैं वह संशोधन का विषय है। आदिवासियों को अशिक्षित रखने में पूँजीपतियों को लाभ होता है। अतः ऐसे लोग आदिवासियों के विकास में आड़े आते हैं। वास्तव में मूलनिवासी ही आदिवासी है। इसी मूलनिवासी आदिवासियों के जीवन संघर्ष का दस्तावेज है ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास।

आचार्य,
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
सरदार पटेल विश्वविद्यालय वल्लभ विद्यानगर
आणंद–389120 (गुजरात)
मोबा. 8320385549

संदर्भः–

1. ग्लोबल गाँव के देवता', रणेंद्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2009, पृ.
2. वही, पृ. 27
3. वही, पृ. 83–84
4. वही, पृ. 19
5. वही, पृ. 36
6. वही, पृ. 84
7. वही, पृ. 48
8 नया ज्ञानोदय, मार्च 2010 ग्लोवल गांव के देवता यथार्थ से मिथक बनते एक समुदाय की व्यथा कथा', मैनेजर पाण्डेय, पृ. 15
9. ग्लोबल गांव के देवता', रणेद्र, पृ. 52
10. वही, पृ. 23
11. वही, पृ. 100
12. 'उपन्यास की महान परंपरा', खगेन्द्र ठाकुर, पृ. 253)

हिन्दी में अम्बेडकर जनसंचार

एड. गुरुप्रसाद मदन

मराठी भाषा में 'मूकनायक' समाचार पत्र को प्रकाशित करके बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने जनसंचार को गति दी थी पर यह गति भाषा के आधार पर सीमित थी। वर्ष 1924 में स्वामी अछूतानंद हरिहर ने आदि हिन्दू आंदोलन कानपुर से प्रारंभ किया। आंदोलन को जन–जन तक ले जाने के लिए स्वामी जी ने 'आदि हिन्दू' समाचार–पत्र प्रकाशित किया। सही मायने में 'आदि हिन्दू' समाचार–पत्र आदि हिन्दू आंदोलन का मुख पत्र था। यही पत्र पाक्षिक एवं साप्ताहिक के रूप में पाठकों के बीच स्वामी जी की अंतिम सांस तक पढ़ा जाता रहा। पत्र लाहौर, फिजी और मोरिसस में भी पढ़ा जाता था। इसी पत्र की एक विशेष बात यह थी कि इसने देश के अन्य प्रान्तों को भी प्रभावित किया। समाज निर्माण में समता, स्वतंत्रता एवं बंधुता की स्थापना करना ही 'आदि हिन्दू' का मूल उद्देश्य था। स्वामी जी के बाद मुंशी हरिप्रसाद टम्टा ने 'समता' समाचार पत्र अल्मोडा से प्रकाशित किया।

डॉ. अम्बेडकर के बाद उनके अनुयाईयों ने हैंडबिल, पोस्टर, बुकलेट, पत्र–पत्रिका एवं स्मारिकाएं प्रकाशित की। मान्यवर कांशीराम ने अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जाति एवं अल्पसंख्यकों को एकत्र करके बहुजन समाज बनाया। इस समाज की जाग्रति के लिए अनेक पत्र–पत्रिकाओं का भी उन्होंने प्रकाशन किया। विभिन्न प्रदेशों से बहुजन समाज से प्रकाशित होने वाली पत्र–पत्रिका एवं स्मारिकाएं जो डॉ. अम्बेडकर के विचार को गति दे रही थीं। डॉ. रूपचंद गौतम का कहना हैं कि वे मेरे लिए जनसंचार की जड़ थीं पर बरगद न थीं। मैंने बहुजन समाज की पत्र–पत्रिका एवं स्मारिकाओं को एकत्र करके 'अम्बेडकर जनसंचार' नाम दिया है जो एक बरगद बनकर शीतलता के साथ–साथ चैरिटी की जगह पैरिटी की माँग करता है। यह 'अम्बेडकर जनसंचार' हिन्दी के अलावा देश की अन्य भाषाओं में भी पढ़ने को मिलता है।

'अम्बेडकर जनसंचार' का प्रथम भाग परंपरागत जनसंचार से प्रारंभ होता हुआ आधुनिक जनसंचार की रूपरेखा को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जनसंचार बुद्धकाल में ढ़िढोरा पीटने से प्रारंभ होता हुआ गीत–संगीत के रूप में आगे बढ़ा। आज अम्बेडकर जनसंचार पत्र–लेखन, मुर्तिकला, पुस्तक, हैंडबिल, पोस्टर, बुकलैट, समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, ऑडियो–वीडियो एवं फिल्म तक की विकास यात्रा को बखूबी के साथ पढ़ा जा सकता है। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचार को आगे बढ़ाने में भारतीय बौद्ध महासभा, समता सैनिक दल एवं बामसेफ की जो भूमिका रही उसको लेखक ने इसी भाग में स्थान दिया है। भाग का प्रत्येक अध्याय अपने आपमें शोध करने का संकेत देता है। जबकि दूसरे भाग की प्रस्तुति स्वामी अछूतानंद हरिहर के समाचार पत्र 'आदि हिन्दू' से प्रारंभ करते हुए आगरा से प्रकाशित होने वाले 'प्रज्ञा प्रसार' तक की यात्रा को रेखांकित किया है। इस भाग में उत्तर प्रदेश की अम्बेडकरी पत्रकारिता के इतिहास की कहानी बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर व मान्यवर कांशीराम के आंदोलन की झांकी है। इतना ही नहीं इसमें 65 पत्र–पत्रिकाओं का उल्लेख मुखपृष्ठों के साथ प्रस्तुत किया गया है। वर्ष 1959 में अम्बेडकर भवन, नई दिल्ली से 'उत्थान' नाम से पत्रिका ने बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचार को आगे बढ़ाना प्रारंभ किया। भाग तीन के प्रकाशित होने तक लेखक को दिल्ली से 77 पत्र–पत्रिकाएं मिलीं, जिनका वे उल्लेख मुखपृष्ठों

के साथ कर पाये हैं। उत्तराखंड, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, बिहार, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल से जो हिन्दी में प्रकाशित हुई पत्र–पत्रिकाएं लेखक को मिली, उन सभी के मुखपृष्ठों की प्रस्तुति के साथ प्रदेशीय पत्रकारिता के इतिहास को चौथे भाग में स्थान दिया है।

कुछ स्मारिकाएं संस्थागत प्रकाशित हुई तो कुछ निजी स्तर पर, पर सबका दृष्टिकोण डॉ. अम्बेडकर के विचार को आगे बढ़ाना ही रहा। ये स्मारिकाएं विशेष अवसरों पर अम्बेडकर अनुयाईयों द्वारा प्रकाशित होती रही हैं। इनमें संस्था की उपलब्धि के साथ महापुरुषों के स्वप्न व संघर्ष की कहानी विशेष रूप से पाठक पढ़ते रहे। संस्थापक स्मारिकाओं को प्रकाशित करके समाज चेतना के लिए निःशुल्क वितरित करते रहे पर शोधार्थियों ने इन्हें पत्रकारिता से सदैव अलग ही रखा। साहित्य में भी इनकी गिनती शून्य ही रही पर डॉ. गौतम ने इन्हें एकत्र करके पत्रकारिता के साथ–साथ जनसंचार से जोड़ कर स्मारिकाओं की उपयोगिता को बढ़ा दिया है। स्मारिकाओं के इतिहास के साथ 55 स्मारिकाओं के मुखपृष्ठों की प्रस्तुति 'अम्बेडकर जनसंचार' के पाँचवें भाग में पढ़ने को मिलती है। अम्बेडकरी चेतना का यह महत्त्वपूर्ण दस्तावेज ही नहीं बल्कि शोधार्थियों को शोध करने के लिए प्रेरित भी करता है, क्योंकि इनमें कहानी, कविता के अलावा वैचारिक लेखों की भरमार है।

छाटे–छोटे कस्बों से लेकर महानगर में ये समाचार पत्र–पत्रिका एवं स्मारिकाएँ प्रकाशित होती थीं। उनके कलेवर को देखने से ही अनुसूचित जाति की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक चेतना की चढ़ती–उतरती सीढ़ियों का स्वरूप दिखाई देने लगता है। बाबा साहेब डॉ. अम्बेकडर के विचार का अनुसूचित जाति के बौद्धिक वर्ग पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि पत्र–पत्रिकाओं के शीर्षक उनके नाम के इर्द–गिर्द ही रखे, जैसे 'भीम पत्रिका', 'भीम सैनिक', 'भीम भूमि', 'अम्बेडकर इन इंडिया', 'अम्बेडकर टुडे', 'भीम शक्ति', 'जय भीम', 'बोधिसत्व बाबासाहेब टुडे' समता, समता शक्ति', 'भीम भूमि', 'भीम सरिता' आदि। हिन्दी क्षेत्र में 'भीम पत्रिका' का जो योगदान रहा वह एक मील का पत्थर है। इसके संपादक एल. आर. बाली पंजाबी/अंग्रेजी के विद्वान तो थे पर हिन्दी के नहीं थे फिर उन्होंने हिन्दी में 'भीम पत्रिका' प्रकाशित की। यह केवल देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी पढ़ी जा रही है। अम्बेडकरी पत्रकारिता जगत में 'भीम पत्रिका' सबसे लम्बी उम्र की पत्रिका है।

कुछ पत्र–पत्रिकाओं के शीर्षक तथागत बुद्ध की विचारधारा से प्रभावित होकर रखे गये, यानी 'मध्यम मार्ग', 'धम्म दर्पण', 'बुद्ध उपदेश', 'देवाना प्रियदर्शी अशोक', 'संघ दर्पण', 'बुद्धवाणी', 'पंचशील भारत', 'प्रबुद्ध भारत', 'सिद्धार्थ उपदेश' लॉर्ड बुद्धा', 'तथागत संदेश' आदि। अनुसूचित जाति के जिन पत्रकारों पर राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा उन्होंने अपनी पत्र–पत्रिकाओं के शीर्षक उसी तरह से रखे, जैसे 'रिपब्लिकन भारत,' 'रिपब्लिकन इंकलाब', 'बहुजन संगठक', 'बहुजन सवेरा', 'बहुजन युग', 'बहुजन प्रभात' बहुजन नायक, 'बहुजनों का बहुजन भारत।' इसी प्रकार बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की पत्रकारिता से प्रभावित होकर 'समता', 'जनता', 'मांझी जनता', 'अभिमूकनायक' संपूर्ण हिन्दी क्षेत्र में लोक प्रिय रहे। यह बात अलग है कि कुछ पत्र–पत्रिकाएं काल के गाल में समा गयीं और कुछ इतिहास के पन्नों में सिमट कर रह गयीं।

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ से लेकर अब अनुसूचित जातियों के कार्यक्रम सदैव होते ही रहे हैं। ऐसी बात भी नहीं है कि हमारे समाज के लोगों ने रिपोर्टिंग न की हों पर कार्यक्रमों का मुकंबल दस्तावेज पढ़ने को नहीं मिलता। कार्यक्रमों की कवरेजों को लेकर 'अम्बेडकर जनसंचार' का छठा भाग तैयार किया गया है। इसमें डॉ. गौतम ने रिपोर्टिंग के इतिहास के अलावा 77 कार्यक्रमों की कवरेजों को स्थान दिया है। ये कवरेज युवा पत्रकारों के लिए प्रेरणा का तथा शोधार्थियों के लिए संदर्भ का काम करेंगी। सातवें भाग में संपादकों की भाषा और विचार अभिव्यक्ति को स्थान दिया गया है।

संपादकों की अभिव्यक्ति से रू–ब–रू कराने के लिए डॉ. गौतम ने पुराने पत्र–पत्रिकाओं की प्रथम संपादकीयों में स्थान दिया है। साक्षात्कार लेने के तौर–तरीके को उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है। पुस्तक समीक्षा के इतिहास के साथ पुस्तक समीक्षा की प्रस्तुति भी इस भाग में दी गई है। इतना ही नहीं बल्कि फीडबैक के इतिहास को भी डॉ. गौतम ने बखूबी के साथ इसी भाग में रेखांकित किया है। शोध की रूपरेखा कैसे तैयार की जाती है और शोध आलेख किस प्रकार से लिखा जाता है? इन सब बातों की जानकारी 'अम्बेडकर जनसंचार' के आठवाँ भाग में उदाहरण के साथ पढ़ी जा सकती है। इसमें 14 शोध की रूपरेखा, 18 शोध आलेखों के अतिरिक्त 9 वैचारिक लेख पढ़ने को मिलते हैं। जो युवक–युवतियाँ शोध करने की सोचते हैं पर शोध रूपरेखा बनाने में परेशानी महसूस करते हैं उनके लिए यह भाग विशेष महत्त्व रखता है। इससे जाहिर है कि डॉ. गौतम केवल व्यवहारिक पत्रकार नहीं रहे बल्कि अपनी अकादिमक स्तर की सोच से भी पाठकों को परिचय कराते हुए दिखाई पड़ते हैं।

'अम्बेडकर जनसंचार' का नवाँ भाग 50 अम्बेडकरवादी पत्रकारों के जीवन को दर्शाता है। इसमें ज्योतिवा फूले, स्वामी अछूतानंद हरिहर, मुंशी हरिप्रसाद टम्टा, लक्ष्मी देवी टम्टा से लेकर मनोज अंतानी तक के प्रमुख पत्रकारों को स्थान दिया है। मोहनदास नैमिशराय विशेष रूप से 'अम्बेडकर जनसंचार' के सृजनकर्ता बने। व्यावसायिक पत्र–पत्रिकाओं में नियमित लिखने वाले ये पहले पत्रकार थे। चन्द्रभान प्रसाद एवं श्यौराज सिंह बेचैन ने दैनिक समाचार पत्रों में कॉलम लिखने प्रारंभ किये। उत्तर भारत में ओमप्रकाश वाल्मीकि तथा जयप्रकाश कर्दम ने कथा के रूप में 'अम्बेडकर जनसंचार' को गति दी। एच. एल. दुसाध ने डावर्सिटी जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर लिखकर पत्रकारिता जगत में अपनी पहचान बनाई। ना काऊ से बैर, ना काऊ से दोस्ती को ध्यान में रखते हुए पचास अम्बेडकरी पत्रकारों की जीवन झांकी को जिस तरीके से प्रस्तुति किया है निश्चिय ही डॉ. गौतम काबिले तारीफ है।

अभी साक्षी गौतम कह रहीं थीं कि मदन जी के पास पाँच हजार पुस्तकों का संग्रह है। यह सच है। मैंने इस संग्रह को डॉ. अम्बेडकर बुद्ध शोध संस्थान कोशांबी, उत्तर प्रदेश के नाम स्थापित किया है। जिस तरह से डॉ. गौतम का 'अम्बेडकर जनसंचार के नौ भागों के संग्रह को पढ़ा उस तरह से अभी तक नहीं पढ़ा। समूचे देश में डॉ. गौतम का यह पहला प्रयास है। इस संग्रह की जड़ में वरिष्ठ पत्रकार मोहनदास नैमिशराय जी को बधाई देता हूँ कि उन्होंने इस समाज से एक ऐसा इतिहास अध्येता एवं पत्रकार तैयार किया जिसने एक सदी के 'अम्बेडकर जनसंचार' को हम सबके सामने प्रस्तुत किया। जिस पुस्तकालय में यह संग्रह शोधार्थियों एवं प्रोफेसरों को दिखाई देगा उन्हें शोध के लिए विवश अवश्य करेगा। भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में 'अम्बेडकर जनसंचार' एक मील का पत्थर है। पत्रकारिता का इतिहास लिखते समय जिन पत्रकारों/संपादकों ने दलित पत्रकारिता को स्थान देना उचित नहीं समझा उनको सोचने के लिए डॉ. गौतम का प्रयास अवश्य ही उन्हें झकझोरेगा।

ऐसी सुन्दर कलेवर की पुस्तक अभी तक मैंने किसी दलित लेखक की न देखी और न पढ़ी। 250 से अधिक पृष्ठों के ये सभी भागों की कीमत 11 हजार रुपये है। छपाई से लेकर मुखपृष्ठ तक सभी भाग पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं पर कीमत को देखकर पाठक पीछे जरूर हटेंगे। विभिन्न दृष्टिकोणों के लिए छोटे से छोटे दस्तावेज को एकत्र करके किताब का आकार देना वह भी नौ भागों में सचमुच में डॉ. गौतम का अद्भुत प्रयास है।

संस्थापक :
डॉ. अम्बेडकर बुद्ध शोध संस्थान कोशांबी, उत्तर प्रदेश
28–बी, थार्न हिल रोड, सिविल लाईन्स,
इलाहाबाद (उ.प्र.) मोबा. 91 9532531589

कविताएँ :–

बदल गया हूँ मैं

– धर्मेन्द्र गुप्त

लोग कहते हैं
बदल गया हूँ मैं
दूर रहने लगा हूँ
रंगीनियों से/चमक दमक से
बहुत कम बोलता हूँ अब
दूसरों की आँखों में आँखें डालकर
देखता भी नहीं
खुलके हँसता भी नहीं...
कोई क्या जाने कि

रंगीनियों ने/चमक दमक ने
मुझे इतना बेरंग कर दिया
कि उनके करीब जाने से डरता हूँ
कम बोलता हूँ
क्योंकि मेरा सच
लोगों को पसंद नहीं आता
दूसरों से आँखें नहीं मिलाता
क्योंकि उनमें सच्चाई तलाशकर
थक चुका हूँ
खुलके हँसता भी नहीं
कि हँसी का उधार
न जाने कब
आँसू की शक्ल में
चुकाना पड़े
इस बदलाव के लिये
मुझे माफ करना
ज़िन्दगी।

के–3/10ए
माँ शीतला भवन
गाय घाट,
वाराणसी–221001 (उ.प्र.)
मो. 089350 65229

लोग

– डॉ. मुकुन्द रविदास

कोई नाक पकड़ कर बैठा था
कोई गल्ला फाड़ चिल्ला रहा था
कोई छाती पिट–पिट कर रो रहा था
कोई पेट के बल लेट रहा था ।

कोई पैर पटक रहा था
कोई हाथ झिड़क रहा था
कोई अंगुलियां मरोड़ रहा था
कोई पिंडुलिया दबा रहा था ।

कोई कडुआ तेल
कोई यूनानी तेल
कोई पुराना देशी घी
कोई बाम , मलहम
लेकर सभी
कोई हाथों में
कोई पैरों मे
कोई छाती में
कोई गल्ले में
कोई पेट में
कोई पीठ में
कोई कमर में
कोई पिण्डलियों में
कोई कोहिनियों में
कोई टेहुनियों में
मल रहा था ऐसे
कोई पाशविक शक्ति
घुस गई हो , ओर निकालने
की पूरी कोशिश हो रही हो जैसे ।
इस कोशिश में
न तो वह बोल पा रहा था

न तो वह सांस ले पा रहा था
न तो सांस छोड़ पा रहा था
पथराई आंखें खुली थी
जिसमें
आंसुओ की दो धाराएँ
बह रही थी
जिसका न कोई किनारा
न कोई अंत था ।
हाथों का हिलना
पैरों का डुलना
बंद था
धीरे – धीरे सांसे थम रही थी
जैसे शाम की बेला में समुद्र की
लहरें शांत हो रही थी ।

फिर अचानक
हाथ सरक गए
सिर उसके लुढ़क गए
पथराई आंखे
दीवारों को देखती रही
दूर उड़ती मखियाँ
पास आने लगी
और पास बैठे लोग
दूर जाने लगे
दूर इतने दूर कि
फिर उसके पास न आ सकेंगे कभी
जिसके बिन एक पल भी नही रह पाते थे
लोग ।

सहायक प्राध्यापक
बृज नंदन इन्कलेव , सेकेंड फ्लोर–208,
जय प्रकाश नगर ,गली नं.–09
(डीनोबिलि स्कूल के पास)
धनबाद – 826001, झारखंड
मो.–7488199101

ग़ज़ल

– खुर्शीद शेख 'खुर्शीद'

मिस्रअ़ ऊला (मतलअ़ का)–वक़्त यारों आ गया है,
क़र्ज़ अपना अब चुका दो इस वतन का

अर्कान–(फ़ा+इला+तुन)+(फ़ा+इला+तुन)+(फ़ा+इला+तुन)+(फ़ा+इला+तुन)+(फ़ा+इला+तुन)
तक़्तीअ़ – ऽ।ऽऽ, ऽ।ऽऽ, ऽ।ऽऽ, ऽ।ऽऽ, ऽ।ऽऽ

वक़्त यारों आ गया है, क़र्ज़ अपना अब चुका दो इस वतन का
दीप नफ़रत के बुझाकर, तुम जहाँ में सिर उठा दो इस वतन का

चल सके ग़द्दार कोई चाल अब ना, आँख हर दम हो खुली ही
हर तरफ़ माहोल[1] अब तुम, देशभक्ति का दिखा दो इस वतन का

भूल मत जाना पुरानी उस रिवायत[2] को, ज़मीं सोना जड़ी थी
सोन चिड़िया फिर बने वो, हाल फिर से तुम बना दो इस वतन का

यह ज़मीं अपनी रही, अपनी रहेगी, शान इसकी कम न होए
शान अव्वल[3] हो हमारी, इस तरह रुत्बा[4] बढ़ा दो इस वतन का

धूम थी सारे जहाँ में, एक वो तहज़ीब[5] थी अपनी निराली
इक नया 'खुर्शीद' तहज़ीबी तराना[6] तुम सुना दो इस वतन का

---

1. वातावरण 2. परम्परा 3. नम्बर एक 4. मान, सम्मान
5. सभ्यता 6. गाना, गीत ।

संस्थापक एवं प्रधान सम्पादक
'अदबी उड़ान' (त्रैमासिक पत्रिका)
च–16, सेक्टर–4, हिरण मगरी, उदयपुर–313002 (राज.)
मोबा. 99506788

मौत के द्वार पर

– डॉ. संतराम आर्य

मुझे
क्या फर्क पड़ता है
सूरज से तपती
धरती हो, या
लू से झुलसता बदन
या फिर
दासता की फुंकार से
भुर्भुरा बन गया
हड्डियों का पिंजर
मैं तो
हर वक्त ही
मौत के द्वारा पर होता हूँ।

जी–3/720, सेक्टर–6,
अम्बेडकर नगर, नई दिल्ली
मोबा. 9811535098

लघुकथाएँ :–

वॉरियर

– डॉ. धीरज वणकर

चीन में जन्मा कोरोना देखते–देखते दुनिया के एक सौ अस्सी से अधिक देश में फैल गया। पूरा विश्व थर–थर काँप उठा। महासत्ता अमेरिका भी लाचार हो गया। कोरोना ने भारत को भी अपनी लपट में ले लिया। दिन दुगुनी रात चौगुनी सम संक्रमित लोगों की संख्या बढ़ती गई। सरकार ने लॉकडाउन लागू किया जिसका पालन भी अच्छी तरह से होने लगा । लॉकडाउन में डॉक्टर, पुलिस, नर्स, सफाईकर्मी, पत्रकार जांबाज खडे रहे जनता की सेवा में रात–दिन। कई जगह उनका स्वागत किया गया तो कहीं पुलिस पर हमला भी हुआ। वस्तुतः यह निंदनीय कृत्य है । वे हमारे लिये खड़े पैर सेवारत हैं।

मगन मन ही मन सोच रहा था–'पूरी सोसायटी लॉकडाउन में सपरिवार आनंद उठा रहा है। मुझे भी कोरोना का बहुत डर लग रहा है साहब! मैं भी फिक्र कर रहा हूँ। मेरी बीवी–बच्चों की आपकी ही तरह। फिर भी आपके द्वारा फेंका गया कूड़ा–कचरा इकट्ठा करके लॉरी में डालता हूँ, झाडू–पोंछा करता हूँ, क्योंकि यह नहीं करूँगा तो चूल्हा नहीं जलेगा।

सदियों से मैं उपेक्षित रहा हूँ। आपके लिए तो अतिशूद्र, मेरी परछाई से भी आप तो नफरत करते हैं । आज कोरोना महामारी में अचानक आपके लिए मैं सफाईकर्मी हो गया। पुष्पों से कहीं मेरा स्वागत किया गया। किन्तु इससे पूर्व न तो कभी आपने मुझे ठीक से बुलाया, ना तो कभी हाथ मिलाया, ना तो कदापि नमस्कार किया। सिर्फ किया था तिरस्कार! अब तुम्हारी रक्षा के लिए, स्वास्थ्य के लिए मुझे कोरोना के जंग में लड़ने वाले योद्धा कहते हो, वॉरियर कहते हो। बहुत–बहुत धन्यवाद।

सुनो! कोरोना तो विज्ञान के कारण नियंत्रण में ही नहीं, खतम–नष्ट हो जायेगा, किंतु मेरे प्रति जो भाव अचानक पैदा हुआ है क्या हमेशा रहेगा? मेरा मन मानता नहीं है।

अध्यक्ष–हिंदी विभाग
बी.डी. कॉलेज लाल दरवाजा,
अहमदाबाद–380001 (गुजरात)
चलभाष – 9638437011

बलि

– हरदान हर्ष

पत्थर–पूजन में बैठा वह एक ज़मी झील की तरह दिखाई दे रहा था और उसके मन–आँगन में एक ज्वार उमड़ रहा था।

पंडित, पंचांग, शुभ–मुहूर्त, पूजन–सामग्री के गुनताड़े में उलझी उसकी घरवाली मकान के शिलान्यास पर होनेवाले धार्मिक अनुष्ठान को लेकर बावली हुई जा रही थी और इस सब पर वह ऐसे उबल पड़ता था जैसे 'अलबर्ट पिन्टो' को गुस्सा क्यों आता है? का नायक।

शुभ–अशुभ के फेर से कोसों दूर वह मकान बनवाने हेतु लोन पास होने के आसरे में था। फिर, अपनी औकात और सुविधानुसार आयोजन हो। माँ के हाथों नींव का पत्थर डले। उसके जीवन की नींव का पत्थर माँ ही तो है। वैज्ञानिक–दृष्टि की रोशनी में यह उसके प्रगतिवाद की राह लिखने, पढ़ने और चलने की कसौटी थी।

रूढ़ियों, रीतियों और दकियानुसी परम्पराओं की जूनी चादर ओढ़े घरवाली को समझाने का उसने भरसक प्रयत्न किया था। पर नाकाम। घर में उपजे शीतयुद्ध की छाँह देहरी लाँघने लगी थी। यारे–प्यारे सभी परिचित एक–एक कर घरवाली के खेमे लामबन्द हो गये थे। वह अकेला पड़ गया था। उसके तर्क–तीर अकारथ जा रहे थे। आखिर गृह–युद्ध में घरवाली सब कुछ छोड़कर मायके जाने को उद्धत हो गई थी। वह

डर गया था। आशियाँ बना नहीं और घर उजड़ रहा है, सोचकर उसने हथियार डाल दिये थे।

ज्वार का उत्कर्ष। मंत्र–उच्चारण के साथ पंडित पूजन के पाँचों पत्थरों पर बारी–बारी से पानी डालने लगा था। पत्थरों को बेमन रगड़ते हुए उसे लगा वह अपने लिखे पर पानी फेर रहा है। अनुष्ठान के उपक्रम में पत्थरों का शुद्धिकरण हो रहा था। जल–स्नान, दुग्ध–स्नान, घृत–स्नान, मधु–स्नान.....कराते–कराते वह पत्थर में तब्दील हो गया था और उनके नींव में जाने से पहले ही वहाँ पहुँच चुका था।

ए–306, महेश नगर, जयपुर–302015 (राज.)
मोबा. 9785807115

एक मौका दे दीजिए

– बी. एल. परमार

कंचनबाई के पति की मृत्यु जवानी में ही हो गई थी। उसका एक बेटा था। मेहनत–मजदूरी कर गुजारा करती थी। उसने अपने बेटे संतोष को स्कूल पढ़ने भेजा। माँ ने सोचा यदि बेटा पढ़ जाएगा तो मेरा भी बुढ़ापा सुधर जाएगा। माँ ने अपनी सारी मजदूरी बेटे की पढ़ाई पर खर्च कर दी। बेटा पढ़ते–पढ़ते स्नातक हो गया। एक दिन अचानक बेटा बीमार हो गया। देखकर माँ घबरा गई । वह बेटे को दवाखाने ले गई। डॉक्टर ने जाँच कर कहा इसकी किडनी खराब है। माँ सुनकर हताश हो गई। उसके पास इलाज के लिए रूपए नहीं थे। पड़ोसी ने कहा काकी विधायक से मिल लो। वे मुख्यमंत्री से इलाज के लिए सहायता राशि दिलवा देंगे। कंचनबाई विधायक के पास पहुँची, विधायक नेक इंसान थे । माँ की वेदना सुन एक लाख रूपए मुख्यमंत्री से स्वीकृत करवा दिए। माँ ने अपनी किडनी देने की स्वीकृति दे दी। डॉक्टर ने ऑपरेशन कर किडनी बेटे को प्रत्यारोपित कर दी।

कुछ दिन बाद बेटा स्वस्थ हो गया । प्रयत्न करने पर उसकी नौकरी बैंक में लग गई । माँ भी खुश रहने लगी । उसने अपने बेटे की शादी एक अच्छे परिवार की लड़की से कर दी। शादी के बाद कुछ दिन गृहस्थि ठीक चली, किंतु बहू का स्वभाव ठीक नहीं था। वह छोटी–छोटी बात पर सास से झगड़ा करती थी। एक दिन बहू ने आवेश में आकर सास को जोर से मार दी। उसके सिर से खून निकल आया। सास ने सिर पर पट्टी बांध ली। शाम को बेटा घर आया। माँ से पूछा, माँ पट्टी क्यों बांध रखी है ? माँ ने कहा, बाथरूम में गिर गई थी । हल्की सी चोंट है, ठीक हो जाएगी। सुबह पड़ोसी ने कहा कल आपकी पत्नी ने माताजी को बहुत मारा। सिर से खून निकल आया था। बेटा सुनते ही व्यथित हो सन्न रह गया। वह अपनी पत्नी को उसके मायके छोड़ आया।

दूसरे दिन पत्नी अपने भाई के साथ पति के घर आई। आते ही पति व सास के चरण स्पर्श कर क्षमा याचना की और कहा कि भविष्य में ऐसी गलती कभी नहीं करूंगी। संतोष ने अपने साले से कहा आपकी बहिन ने जो मेरी माताजी के साथ किया वह अक्षम्य है इसे ले जाइए। दोनों भाई–बहन ने हाथ जोड़कर कहा बस, हमें एक मौका दे दीजिए।

37, भार्गव कॉलोनी, नागदा जं.
जिला उज्जैन–456335 (म.प्र.)
मोबा. 8770607747

जीवन का आनंद

– डॉ. सुभाष नारायण भालेराव 'गोविन्द'

जीवन में आना, समय बीता कर चले जाना, कितना महत्वपूर्ण पहलू है, जीवन तो हर कोई जीता है, जीवन कैसे जीया जाए ?

जीवन के संबंध में यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात एक बार भ्रमण करते हुए एक शहर में पहुँच गये, वही उनकी मुलाकात एक वृद्ध व्यक्ति से हुई, दोनों काफी घुल–मिल गये।

सुकरात ने उसके व्यक्तिगत जीवन में काफी रूचि

ली और काफी खुलकर बातें की।

सुकरात ने संतोष व्यक्त करते हुए कहा, आपका विगत जीवन तो बड़े शानदार ढंग से बीता है, पर इस वृद्धावस्था में आपको अब कौन–कौन से पापड़ बेलने पड़ रहे हैं, यह तो बताइये ?

वो वृद्ध व्यक्ति किंचित मुस्कुराये और कहा– मै अपना पारिवारिक उत्तरदायित्व अपने समर्थ पुत्र को देकर (और इन सबको सर्व सामर्थ्यवान प्रभु को समर्पित करके) निश्चिंत हूँ। वे जो कहते हैं में वो कर देता हूँ, जो भी मुझे खिलाते है मैं खा लेता हूँ और अपने पौत्र–पौत्रियों के साथ खेलता रहता हूँ। बच्चे कभी भी भूल करते हैं तब भी मैं चुप रहता हूँ। मैं उनके किसी कार्य में बाधक नही बनता पर जब कभी वे परामर्श लेने मेरे पास आते हैं तो मैं अपने जीवन के सारे अनुभवों को उनके सामने रखकर की हुई भूल से उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर से सचेत कर देता हूँ वो मेरी सलाह पर कितना चलते है यह देखना और अपना मस्तिष्क खराब करना मेरा काम नही है, वे मेरे निर्देश पर चले है। पर मेरा उनसे आग्रह नहीं है।

परामर्श देने के बाद भी यदि वे भूल करते हैं तो मैं चिन्तित नहीं होता उस पर भी वे पुनः मेरे पास आते हैं तो मेरा दरवाजा सदैव उनके लिये खुला रहता है मैं पुनः उचित सलाह देकर उन्हें विदा करता हूँ।

उन वृद्ध की बात सुनकर सुकरात बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने कहा कि आपने इस आयु में जीवन को कैसे जिया जाए यह बखूबी समझ लिया है।

यह भविष्य के लिये सीख है इसे अमल करेंगे तो हमें सुकून होगा जीवन बिना किसी अवरोध के आसानी से कट जावेगा।

'अवंतिका' ए38, न्यू नेहरू कॉलोनी
ठाठीपुर, मुरार, ग्वालियर–474011 (म.प्र.)
मोबा. 8989598860

कर्म

– रत्नकुमार सांभरिया

भारती भरकम देह की धनी थी, पंडिताइन। डोरबेल घनघनाते ही वह तिमंजिला हवेली की सीढ़ियाँ बैठ–बैठकर, छोड़ती नीचे उतर आती थी। बेल चारावाली ने बजायी थी। उसकी रेहड़ी सड़क किनारे खड़ी थी। पंडिताइन ने उससे हरे चारे की पाँच पूलियाँ खरीद लीं। एक गाय रोजमर्रा इंतजार में उधर मुँह लफाये खड़ी थी। पंडिताइन ने चारा चरती गाय की गर्दन अपनी बाँहों में भर ली। चिमटती, पुचकारती और चुमकारती चारा खिलाती रही। पंडिताइन के लिए इससे बड़ा सुख, इससे बड़ा धर्म–कर्म और स्वर्ग जाने का दूसरा मार्ग नहीं था।

चारावाली ने उसकी हाँफी देखी। सहज होते हुए आग्रहपूर्वक अनुरोध किया, ''दादीजी, आप तीसरी मंज़िल से नीचे आती हैं। आपका शरीर दोहरा है। उतरते–चढ़ते तकलीफ होती है। आपके नाम पर मैं गायों को चारा डाल दिया करूँगी। सप्ताह दस दिन में हिसाब कर लेंगे और लोग भी....। आप गायों से लिपट–लिपट रोज़ साड़ी भी गंदी कर लेती हैं।'

पंडिताइन ने होंठ बिचकाये। हाथ नचाया। चिनकी उठी, 'बावली हुई है। धर्म हाथ का। गौ–माता के बारे में ऐसी अधर्मी बात मत निकालना मुँह से, सेवा करती साड़ी खराब कर लेती हूँ। कह देती हूँ, हाँ।' पंडिताइन के ऊपर के चार दाँतों ने उसका साथ छोड़ दिया था। वह बोली, तो थूक के फुचके इधर–उधर बिखर गये।

चारावाली अपनी रेहड़ी आगे खींच ले गयी थी।

तबियत खराब होने के कारण मेहतरानी झाड़ू लगाने नहीं आ सकी थी। उसने दसवीं में पढ़ने वाली अपनी लड़की को भेज दिया था, एवजी। लड़की धुली, प्रेस की हुई स्कूल की ड्रेस पहने थी। वह झुककर आँगन की नालियाँ खींच रही थी। हवा में लहराती उसकी चुन्नी मटके से छू गयी। पंडिताइन क्रोध से सुलग उठी। उसने लकड़ी उठा ली और लड़की की ओर फेंकी। निशाना चूक गया था। डरी और सहमी लड़की वहाँ से भाग खड़ी हुई।

पंडिताइन ने मटके को उठाकर बाहर फेंक दिया और लड़की की जात को गालियाँ बकती रही।

भाड़ावास हाऊस, सी–137, महेश नगर
जयपुर–302015 (राज.)
मोबा. 9369973494

अनुभूयमान अनुभूतियों का भोग्यमान दस्तावेज : 'मेरी इतनी सी बात सुनो'

पुस्तक समीक्षा

– डॉ. भूपेन्द्र हरदेनिया

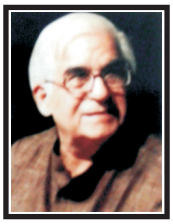

डॉ. देवेन्द्र दीपक

यह पुस्तक आश्वत के संस्थापक सम्पादक दलित साहित्य के पुरोधा रचनाकार डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी को समर्पित है। जिसकी बखूबी समीक्षा डॉ. भूपेन्द्र हरदेनियाजी ने की है।

– डॉ. तारा परमार

आज के साहित्यिक परिवेश में दलित विमर्श के साथ एक गम्भीर मुद्दा भी है, साथ ही एक चिंतनीय विषय भी। विषय उन दलितों का जिन्हें आज हम पंचम वर्ण या अन्त्यज भी कहते हैं। 'चातुर्वण्यं मया सृष्टं' कहते हुए गीता में भी कृष्ण ने बताया था कि संसार में उनके द्वारा सिर्फ चार वर्णों का ही सृजन हुआ है, लेकिन समाज के उच्च वर्ग की स्वार्थ लिप्सा के कारण उस पंचम वर्ण का भी निर्माण हुआ। ये वर्ण आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक धरातलों पर उपेक्षित ही नहीं अस्पृश्य भी माने जाते हैं। बौद्ध, जैन धर्म के प्राचीनकाल से ही सामाजिक और धार्मिक असंतुलन को दूर करने का प्रयत्न करने पर भी इनके प्रवचन तालपत्रों तक ही सीमित रह गये। वर्ण व्यवस्था में कुछ वर्णों की उन्नति के लिए कुछ वर्णों को दबाया गया था। फलस्वरूप पंचम वर्ण का निर्माण हुआ। परम्परागत हिन्दू समाज ने इस वर्ण को दलित या दमयित वर्ग का नामकरण भी किया था। आज इसी दलित को उनके अधिकार दिलाने और शोषण से मुक्ति दिलाने हेतु अनेक दल, अनेक संगठन एवं राजनैतिक पार्टियाँ अपने स्तर पर अपनी–अपनी रोटी सेकने में लगी हैं, लेकिन यथार्थ में अगर कोई कार्य हुआ है तो वह साहित्य के क्षेत्र में। साहित्य में अनेक विचारकों और चिंतकों ने दलितों पर अपनी लेखनी चलाई है, और उस लेखनी से दलितों की मार्मिक व्यथा और कथा को लोगों तक पहुंचाने का स्तुत्य कार्य भी किया है, लेकिन एक विवाद इसमें भी चल पड़ा कि दलितों की कथा दलित ही लिख सकते हैं, क्योंकि जो भोगता है, वही उसे सही ढंग से व्यक्त कर पाता है, इसीलिए एक कहावत भी चल पड़ी है कि दलितों की कहानी दलितों की ही जुबानी।

प्रायः ऐसा माना जाता रहा है कि जो भोग्यमान अनुभूति है, वही सही ढंग से अभिव्यक्त हो सकती है। जो जिसने भोगा ही नहीं, उसे वह कैसे अभिव्यक्त कर सकता है, पर यह अंशतः सत्य हो सकता है, पूर्णतः नहीं, अगर ऐसा होता तो प्रेमचन्द अमर न होते। आज हिन्दी कथा की कहीं बात होगी तो प्रेमचन्द के उल्लेख के बगैर वह बात अधूरी ही रहेगी। इसी प्रकार यह भी यथार्थ है कि अनुभूयमान अनुभूति भी लगभग वैसे ही होती है या हो सकती है, जैसी भोग्यमान अनुभूति होती है। इस संसार में करुणा एक ऐसा शब्द है जो अगर न होता तो मानवता ही न होती। क्योंकि करुणा के माध्यम से हम दूसरे के दर्द को महसूस कर सकते है, भले ही वह दर्द,कष्ट हमने भोगा न हो, लेकिन हमने महसूस जरूर किया होगा। यह सब अनुभयमान अनुभूति के कारण ही होता है। इस अनुभूयमान अनुभूति की सशक्त अभिव्यक्ति जो कि अन्त्यज संवेदना को एकदम सजीवकर देती है, वह हमें दिखाई देती है, प्रसिद्ध रचनाकार डॉ. देवेन्द्र दीपक की रचनाओं में। इस तरह की अभिव्यक्ति को लेकर हाल ही में उनका एक

महत्त्वपूर्ण काव्य संग्रह 'मेरी इतनी–सी बात सुनो' प्रकाश में आया है। साहित्य जगत में भी इसकी खासी चर्चा है। इस काव्य संग्रह का शीर्षक ही बहुत थोड़े में बहुत कुछ कह जाता है, अर्थात् सामासिकता लिए हुए है। यह सम्पूर्ण काव्य संग्रह अन्त्यज अनुभूतियों या दलित चेतना को समर्पित है।

रचनात्मकता की तिलस्मी दुनिया के सुपरिचित, तेजस्वी और सशक्त हस्ताक्षर डॉ. देवेन्द्र का यह नवीनतम कविता संग्रह उनकी अनूठी कृति है। इस संग्रह की विषय–वस्तु पर अगर दृष्टिपात किया जाए तो कहा जा सकता है कि यह संग्रह जनपदीय भारत का अस्पृश्यीय धर्मशास्त्र है। इस संग्रह में दलित समस्या के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संज्ञान के साथ, दलितीय जीवन के बहुत बड़े क्षितिज को भी ढूँढा और उन संकटों के विरुद्ध एक नई दृष्टि विकसित की है। इस हेतु इस संग्रह की कविताएँ दलित समस्या के अपने नए भाव–बोध और दृष्टि को उकेरते हुए एक नए परिवेश में प्रवेश करती है। जाहिर है उनकी काव्य दृष्टि तत्कालीन अंतराल के साथ, स्मृति के वैभव से टकराती है। इसीलिए उनकी कविताएँ दलित चिंतन को इस कदर जीवंत कर देती हैं, मानो वह रचनाकार की भोग्यमान रचना ही हो। देवेन्द्र दीपक के इस संग्रह की साधारण, सहज और सरलता से समझ आने वाली कविताओं में दलित विमर्श को एक विशिष्ट और नवीन तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

दीपक जी के इस संग्रह से जब आत्मसात होता है तो ज़ाक देरिदा का विखंडनवाद याद आता है, जो पाठ के पुनर्पाठ, उसके अन्तर्पाठ, उसकी पड़ताल और उस पाठ के विखंडन पर बल देता है, लेकिन दीपक जी के इस संग्रह की कविता विखंडन की कतई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनकी कविताएँ बगैर विखंडन के शहद का स्वाद और शहद की सेहत एक साथ दे देती हैं। आदमी और आदमी की छाया की तरह उनकी कविता अन्वयात्मक तरीके से व्यक्त होती है। उन्होंने स्वयं भी इस संग्रह की भूमिका में लिखा है कि 'मेरी प्रत्येक कविता में आपको एक अन्विती मिलेगी। विचार की, भाव की, प्रभाव की। कविता में प्रयुक्त होते ही मानो शब्द को हल्दी लग जाती है और साधारण–सा शब्द एकदम महत्त्वपूर्ण हो जाता है। मेरी कविता में प्रत्येक शब्द किसी आशय से विन्यस्त है। मेरी अभिधा, व्यंजनागंधी है। मेरी कलम 'साफ बयानी' और 'सपाट बयानी' के अन्तर को समझती है। मेरी कविता का एक पाठ प्रत्यक्ष है, लेकिन उसके भीतर एक अन्तर्पाठ भी है। मेरी कविता अपने पाठक को उस अन्तर्पाठ तक सहज ले जाती है।

माना जा सकता है कि इस संग्रह की कविता मार्ग और लक्ष्य की कविता है, वह आपका मार्ग भी है और लक्ष्य भी। लक्ष्य कौन सा? लक्ष्य मुक्ति का। अब मुक्ति किससे? तो मुक्ति उस मानसिकता से जो आज हमारे समाज में दलितों और अस्पृश्यों के सामान्य वर्ग के लोगों में व्याप्त है। मुक्ति व्यवहार से जो उच्च वर्ग निम्न वर्ग के प्रति करता है, मुक्ति उस यातना से जो अन्त्यज को तिल–तिल मरने को बाध्य कर रही सच तो यह है कि ये कविताएँ सिर्फ विरोध की कविताएँ ही नहीं हैं बल्कि विरोध के मुखर न होने की स्थिति और उन पीड़ाओं से जूझती मनःस्थिति की पारदर्शी कविताएँ हैं। 'उनकी कविता सवर्ण समाज के अन्तर्विरोध पर अपने को फोकस करती है। यह उसकी मुख्य भूमिका है। लेकिन अस्पृश्य समाज के अपने अन्तर्विरोध भी हैं। उन अन्तर्विरोधों की चर्चा कहीं होगी? लोग इस बात से दुःखी है कि उनके कंधे पर किसी का पाँव है। दुःखी होना स्वाभाविक है। लेकिन वह यह भूल जाते हैं कि उनके पाँव के नीचे भी कोई कंधा है जो दबाव की पीड़ा से आहत है। ऊपर वाले से मुक्ति चाहते हो तो नीचे वाले को भी मुक्ति देनी होगी।'

दीपक जी के इस संग्रह की कविता सवर्ण और दलित के अन्तर्विरोधों से मुक्ति की कविता है। इसी मुक्ति की आकांक्षा लिए इस संग्रह की कविता के माध्यम

से दलितों के प्रति सवर्ण मानसिकताओं के कई कटु–सत्य परत–दर–परत सामने तो आते ही हैं, साथ ही सवर्ण मानसिकता में अस्पृश्यता की गहरी पैठ का दुष्परिणाम भी सामने होता है। इस संग्रह की कविताएँ उच्च वर्ण के मनस्तत्त्व में विद्यमान क्रूर, कठोर और कटु अन्त्यजीय मनःस्थिति की पड़ताल करते हुए, उन तमाम घटनातीत गंभीरताओं को समेटते हुए या फिर उन वैचारिक विसंगतियों की जमीन पर, वर्तमान में घटित उन तमाम कराह और तिक्तता को भी गहरे ढंग से चिन्हित करती हैं। लिहाजा सहृदय दलितीय जन–चेतना, उनकी खोई सांस्कृतिक परंपराओं, उनके भाव–संसार और इतिहास के पन्नों से अलग होते द्वंद्व के वर्तमान से परिचित तो होते ही हैं, साथ ही विचलित भी।

सामाजिक दृष्टि से अगर देखा जाए तो भारत की कई मामलों में स्थिति प्राचीनकाल से ही अत्यंत दुर्बल रही है। प्राचीन काल में जाति–उपजातियों का विभाजन इसके प्रमाण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र–इन चारों वर्गों के अतिरिक्त समाज का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा था जिसे 'अन्त्यज' पुकारते थे। इन्हें समाज के किसी भी वर्ण में स्थान प्राप्त न था। चमार, जुलाहे, मछुआरे, टोकरी बुनने वाले, शिकारी आदि इस वर्ग में सम्मिलित थे। इनमें भी निम्न स्तर हादी, डोम, चाण्डाल, वधाटु आदि का था जो सफाई और स्वच्छता के कार्यों में लगे हुए थे, परन्तु इन्हें नगरों और गाँवों के बाहर रहना पड़ता था। वैश्या तथा शूद्रों को वेद और धार्मिक शास्त्रों को पढ़ने का अधिकार न था। यदि इनमें से कोई ऐसा करता था तो उनकी जबान काट ली जाती थी। समाज से पृथक वर्गों की स्थिति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनकी स्थिति तो वैश्यों और शूद्रों से भी निम्न थी। इसीलिए सिसृक्षु डॉ. देवेन्द्र दीपक का अन्तर्मन, विवेकानन्द के उन्मन मन के रूप में जातीय दम्भ रखने वाले समाज के ठेकेदारों से प्रश्न कर रहा है और कह रहा है–उन्मन, उन्मन, उन्मन/तुम्हारा प्रेम भरा मन/बंधु/तुम्हारे उन्मन मन में/चींटियों के लिए है आटा/पक्षियों के लिए दाना/मछलियों के लिए गोलियाँ/बंदरों के लिए चने/कुत्ते के लिए रोटी/और गाय के लिए गो–ग्रास!/यह सब अच्छा है। बंधु,/अछूत के लिए/तुम्हारे उन्मन मन में/क्या है/तुम्हारे पास?/यह सवाल मैं नहीं/विवेकानंद पूछ रहा है!

'मेरी इतनी–सी बात सुनो' संग्रह की इक्यावन कविताएँ संग्रह की मणिमाला हैं या यूँ कहें जिस प्रकार मालाकार माल्य निर्मिति के समय पुष्पों का चुनाव कर एक श्रेष्ठ माला का निर्माण करता है, उसी प्रकार इस संग्रह की कविताओं को पुष्प की तरह ही चुना गया है, लेकिन देखने में पुष्पित और पल्लवित इस संग्रह की कविताएँ उनसे भी बढ़कर माणिक्य और मोती हैं, जो कभी बासी नहीं होते, हमेशा दैदीप्यमान रहते हैं। वह रत्न जड़ित एक ऐसा सुन्दर हार है जिसे अगर पहन लिया जाए तो निश्चित ही जन–कल्याण सम्भव है।

इस संग्रह की पहली कविता शीर्षकीय कविता है, जो कि पीढ़ीगत होते दलितीय अत्याचार के आक्रोश का बीजवपन भी कही जा सकती है। जिन्होंने हमेशा अत्याचार सहे, अस्पृश्यता के नाम पर कष्ट सहे वही आज अपना स्वर शोषकों के प्रति मुखर किए हुए हैं। अपनी बात को, अपनी आवाज को उन तक पहुँचाने और अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए वह मुखर है। वह सब सहते हुए भी अन्जान नहीं हैं, इसीलिए वह कहता है–बहरे नहीं हो/और सुन सकते हो/तो/मेरी इतनी–सी बात सुनो/बंदूक हूँ,/ कंधा नहीं हूँ मैं/अन्त्यज हुआ तो क्या/अंधा नहीं हूँ मैं?

चिरकाल तक सहा गया कष्ट या लम्बे समय से सहा गया दुःख का, जब अतिरेक हो जाता है, तब कुम्भोच्छलनवत वह भाव या दुख, वह कष्ट आक्रोश के रूप में छलक उठता है, तत्समय हम महसूस करते हैं और देखते हैं कि अतीत की कचोटती घटनाओं से मुक्ति की छटपटाहट, भीतर ही भीतर प्रतिशोध, अपनी बेचैनी की मुक्ति का आक्रोश, समक्ष हो उठता है। दीपक जी के लिए इस संग्रह की कविताएँ–कबीरदास का कर्घा

है/रविदास की कठौती/सेन का उस्तरा/और नामदेव की सुई है। उनकी कविता पसीने की गंध का सौंदर्यशास्त्र है, उत्पीड़न के बखान का धर्मशास्त्र है, एवं अन्त्योदय से सर्वोदय फैला समाजशास्त्र भी है। इसीलिए इस संग्रह की कविताओं में कवि की महीन दलितीय संवेदना, दृष्टि सम्पन्नता, अपने आलोचनात्मक विमर्शों के माध्यम से अस्पृश्यता की जमीनी पड़ताल त्रिशास्त्रीय तरीके से करने का प्रयास किया गया है। यह संग्रह विभिन्न अन्त्यज अनुभूतियों की हकीकत के साक्ष्य पाठक के समक्ष रखने का सफल प्रयास करता है।

शोषण का इतिहास बहुत पुराना है, लेकिन यह शोषण किस कारण और वजह से। सिर्फ इसलिए ताकि उस पर शोषक सिर्फ अपनी रोटी सेंक सके। हर व्यक्ति का अपना जीवन होता और उसे वह जीवन अपने ही तरीके से जीने का अधिकार भी होता है, उसके जीवन में कोई हस्तक्षेप करे तो द्वंद्व की स्थिति पैदा होती ही है, आज वह द्वंद्व दलित और शोषक के बीच भी उपस्थिति है, क्योंकि तबका कोई भी हो वह अपना जीवन अपने स्तर से जी सकता है, ज्यादा न सही कम में ही सही, इसीलिए इस संग्रह का शोषित जो कि दलितीय भूमिका में कहता है—मेरी आग इसलिए नहीं/कोई दूसरा/इस आग पर अपनी रोटियाँ सेंके/मेरी आग मेरी अपनी है/मेरी आग इसलिए नहीं/कोई दूसरा/इसे अपनी पूँजी समझे और अपना धंधा चलाए/मेरी आग/मेरी रोटी/पतली हो या मोटी।

इस संग्रह की प्रत्येक कविता एक सवाल उत्पन्न करती है और उसके जवाब की तह तक ले जाने का महनीय प्रयास भी। निश्चय ही वह सवाल दलितीय संवेदना से जुड़ा हुआ है और उसका जवाब भी वही। जिसकी रचनात्मकता का अपना विशिष्ट प्रवाह है जहाँ हमारी संवेदनाओं पूर्णतया अन्त्यज जीवन और उनसे जुड़ी दारुण गाथाओं के लिए संवेदित हैं। इसीलिए इस संग्रह की एक कविता 'सूत्रधार' में उस सूत्रधार को पकड़ने की बात कही गई है जो शोषणीय घटना का प्रमुख है। कवि कहता है कि—हर घटना के पीछे कोई हाथ होता है/उस हाथ के पीछे भी होता है कोई हाथ/...और यह जो आखिरी हाथ है/बस, वही सूत्रधार है.../हम सूत्रधार को पकड़ें।

शोषण चाहे मानसिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या धार्मिक, शोषण तो शोषण ही होता है। शोषण स्त्री या पुरुष किसी का भी हो सकता है। लेकिन शोषण जहाँ होगा वहाँ कभी न कभी विद्रोह भी होगा। चाहे उसमें कितना भी समय लग जाए। शताब्दियों से धर्म की रूढ़ियों के नाम पर हमारे देश में एक वर्ग का सामाजिक, मानसिक और आर्थिक शोषण किया गया है। लेकिन जैसे ही मानवीयता के भाव जागे और शोषित वर्ग के साथ सभी वर्गों में चेतना आई परिणामस्वरूप विद्रोह का विस्फोट हुआ और रामू जैसे लोग पैदा हुए जिन्होंने अपनी चेतना को जाग्रत कर अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को समूल नष्ट करने की ठानी। इसीलिए इस संग्रह की कविता 'रामू खुद लड़ेगा' का रामू आज अपने अतीत को याद करते हए मोर्चा संभाले हुए अन्यानेक शोषकों जिन्होंने कभी उसके साथ अत्याचार किया से लड़ने के लिए तत्पर है रामू कहता है—मैं अछूत हूँ/मेरा नाम रामू है। मेरी तनातनी, कहा—सुनी, गिला—शिकवा/जो कुछ भी है। वह पंडित रामदीन/ठाकुर रामसिंह/लाला रामदयाल से है। रामू अपनी लड़ाई खुद लड़ेगा/... रामू जानता है। उसके सिर पर मैले का टोकरा/क्यों, कब और कैसे आया? स्मृतियाँ कभी नष्ट नहीं होती और वो स्मतियाँ तो कभी नहीं जो जीवन और मृत्य के प्रश्नों से जुडी होती हैं। ऐसी स्मृतियाँ जिसमें जुड़े होते हैं मौत से साक्षात्कार और जीवन को हर हाल में बचा लेने की उत्कृष्ट लालसा के प्रसंग, वे काल के नेपथ्य में जाकर वर्तमान से संवाद करती रहती हैं। वे मनुष्य के अवचेतन में बीज रूप में अवस्थित रहती हैं, जो स्थान, काल और परिवेश के साम्य के साथ पुनर्जीवित होकर सामने आ जाती हैं, तथा वर्तमान को झकझोर भविष्य को आशंकाओं से भर देती हैं। रामू जानता है कि आज जिस स्थिति में वह है, किसकी

देन है।

आज हमारे देश का सबसे बड़ा जहर है अस्पृश्यता। अस्पृश्यता के वातावरण ने भारतीय समाज में जिस कदर वर्ग वैषम्य और वर्ग विभेद का जहर घोला है, उससे आज का सम्पूर्ण भारतीय समाज अपनी मृण्यमयी भूमिका में है। दलितों को अस्पृश्य और नीच जाति के मानने के कारण समाज में इनका जीवन दूभर हो जाता है। फलस्वरूप वे मानव होकर भी समाज के अन्य लोगों के जैसे स्वतंत्र रूप से जीवन बिता नहीं सकते हैं। सार्वजनिक स्थानों पर विचरना वर्जित है। अस्पृश्यता की यह रीति दलितों के लिए अभिशाप बन गई है। हमें अस्पृश्यता के दुष्परिणाम मालूम होते हुए भी आज हम पर वह इस तिलिस्म के साथ हावी हो चुकी है, कि हम उसके जादुई आवरण से उबर नहीं पा रहे हैं। इस बात से हम बहुत अच्छी तरह वाकिफ हैं कि अस्पृश्यता अवैदिक है/अस्पृश्यता अधार्मिक है/अस्पृश्यता अनैतिक है। अस्पृश्यता हिंसा है/अस्पृश्यता पक्षपात है/अस्पृश्यता शोषण है/अस्पृश्यता सामाजिक रोग है/अस्पृश्यता तामसी है।...इतना सब–कुछ है/अस्पृश्यता के खिलाफ!..फिर भी ताल ठोककर/आँखें तरेरकर/नथुने फुलाकर/बदकलाम अस्पृश्यता/ललकारती है यहाँ–वहाँ/गाँव–नगर द्वारद्वार/बार–बार/साफ–साफ! क्योंकि हमारे जो आज प्रयास हैं वे भरसक नहीं हैं, वे नाकाफी हैं, इस अस्पृश्यता के जहर को कम करने के लिए। वस्तुतः उच्च होने का भारतीय समाज के सवर्ण वर्ग में जो कूट–कूट कर भरा हुआ है, उस अहं का दम्भ उसे इस अस्पृश्यीय मानसिकता से उबरने नहीं देता। आज जिस कदर जातीय दम्भ हमारे समाज में व्याप्त है, वह उस अस्पृश्यता को पीढ़ी–दर–पीढ़ी पोषित और पल्लवित करने के लिए काफी है। इसीलिए तुम्हारे बाबा ने/प्याले में भर दिया जातीय दम्भ/और तुम्हारे पिता ने/उसे दूध की तरह/पी लिया/तम्हारे पिता ने/प्याले में भर दिया जातीय दम्भ/और तुमने/उसे रूहअफ़जा की तरह/पी लिया और अब तुमने/प्याले में भर दिया जातीय दम्भ/ और तुम्हारा बेटा/उसे शराब की तरह पी रहा है!

आर्थिक और सांस्कृतिक मजबूती से अपना प्रभाव दिखाने वाले उच्च वर्गों के सामने यह वर्ग दब जाता है। उनमें समाज की घातक प्रथाओं का विरोध करने की हिम्मत नहीं होती। वे लोग विश्वास में रहते हैं कि छोटे–बड़े भगवान के घर में बनकर आते हैं। फलस्वरूप रीति–रिवाजों का कई लोग कष्ट झेलते रहते हैं। दबंग की दबंगई से हमेशा डरते हैं, लेकिन यह वास्तविक है कि आज भारतीय ग्रामीण परिवेश में जिस कदर राजनीति का दबंगईकरण हो गया है उससे तो ऐसा लगता है कि दबंग जब चुनाव जीतेगा/बंदूक चलाएगा/गोलियों पर गोलियाँ चलाएगा/खुशियाँ मनाएगा/कोई मरे/उसकी बला से/... दबंग जब चुनाव हारेगा/वह भी किसी दलित से/दबंग बंदूक चलाएगा/गोलियों पर गोलियां चलाएगा/हराने वाले को सबक सिखाएगा।

कविता संग्रह की कविताएँ दलितीय आत्म–दुःखबोध से भरी कविताएँ हैं, उसमें इतिहास है उस परम्परा का जिसमें एक सामान्य आदमी किस तरह अपनी अन्त्यजीय भूमिका में आ जाता है, किस तरह वह अस्पृश्यता के कुचक्र में फँस जाता है, किसी का भला करने के चक्कर में। और फिर उस चक्रव्यह में वह इस तरह फँस जाता है कि वह उससे कभी उबर ही नहीं पाता। वह छुआ–छूत के इस गहरे दलदल में फँसता ही चला जाता है, क्योंकि जिसका उद्धार किया गया, वह नहीं चाहता है कि उद्धारक फिर कभी उठे। इस पुरावृत्तीय भूमिका को इस संग्रह की एक कविता 'घोड़ा बनने की भूल' में बखूबी बताया गया है–उस दिन पथ में बड़ी दलदल थी/और हमारा रथ दलदल में बुरी तरह फँसा था/हमने तुम्हें लगाम सौंपी/और खुद हम सब/आदमी से घोड़ा बन गए थे। रथ को खींचने में/हमारी गर्दनें छिल गई थीं/और आज यह

सूखी–सख्त चमड़ी/गवाह है/कि हम सचमुच आदमी से घोड़ा बन गए थे।/बामशक्कत, बामुश्किल/रथ दलदल से निकल/जब डामर की पक्की और चौड़ी/सड़क पर आया तो हमने सोचा/कि अब तो सड़क पक्की है/डामर की है/और चौड़ी भी है/तो फिर हम भी अपने को/क्यों न समझना शुरू करें आदमी!/लेकिन इससे पहले/कि हममें से कुछ लोग/अपने को आदमी समझते/तुम चाबुक चटकाने लगे/कुछ ऐसे/जैसे हम आदमी नहीं/सचमुच घोड़े ही थे।

दलित समाज को हर स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है...ब्लाटिंग पेपर/जिस तरह सोख लेता है/स्याही की तरलता को/उसी तरह अस्पृश्य भाव ने/मानव का स्वाभिमान को सोख लिया।...ऐसे स्वाभिमान शून्य 'बहिष्कृत भारत' के/ मूक नायक के लिए तुम्हारा संघर्ष/पानी के लिए संघर्ष/ज्ञान के लिए संघर्ष/दर्शन के लिए संघर्ष/आच्छादन के लिए संघर्ष/भीतर संघर्ष/बाहर संघर्ष/संघर्ष ही तुम्हारे जीवन का/बन गया स्थायी भाव/सौ अभावों के बीच/बस यही भाव!

भारत के आधुनिक समाज की यह विडम्बना ही कही जाएगी कि लोकतांत्रिक विचारों और मूल्यों तथा समानता और भाईचारे के प्रचार–प्रसार के बावजूद जातिगत भेदभाव एवं छुआछूत जैसी बीमारियाँ हमारे समाज का अपरिहार्य अंग बनी हुई हैं। प्रगतिशील और जनवादी विचारों और मूल्यों का समर्थन करने वाले लोग भी अपने जातिवादी संस्कारों का मोह नहीं त्याग पा रहे हैं। लेकिन सेक्स के मामले में कुछ छलिए, सवर्ण समाज के लोग अपने जातिवादी चेहरे को छुपा लेते हैं या स्थगित कर देते हैं और यौन–वृत्ति के बाद पुनः ब्राह्मणवादी संस्कारों के खोल में लौट आते हैं। इसीलिए इस संग्रह की एक रचना भारत की प्रजा और उसके प्रजातंत्र को धिक्कारती है। उस मानसी प्रवृत्ति को धिक्कारती है जो औरत की अस्मत को सिर्फ अपने भोग–विलास की चीज समझते हैं, और उसे सरेराह लूट लेते हैं, उसे लज्जित करने का प्रयास करते हैं, इसीलिए कवि कहता है कि गन्ने के खेत में/रेत–रेत होती/औरतों की अस्मत!/भारत के लस्टम–पस्टम प्रजातंत्र/तू धन्य है, तुझे धिक्कार है।/दरिन्दों जाओ/अपनी पत्नियों से जाकर/अपनी इस मर्दानगी का/बखान करो/देखो, उनकी आंखों में/तुम्हारा महिमा मण्डित देवत्व/आज खण्डित है/तुम्हारे बच्चे/तुम्हें पिता नहीं/पिशाच समझेंगे।

जातिप्रथा नामक कलंक के कारण ही दलित वर्ग जीवन की महत्त्वपूर्ण सुविधाओं आवश्यकताओं से वंचित रहा है। जीवन जीने की असुविधाओं ने इस वर्ग को हीन भावना से ग्रसित कर दिया है। जिससे वह उबरना चाहते हुए भी उबर नहीं पा रहा है। दलितों का हर जगह समाज में अनादर होता रहा है। यहाँ तक कि देहात में तो उनकी स्थिति और भी बद्तर है। उनको दो जून की रोटी पेट तक के लिए मयस्सर नहीं है। इसलिए मेरे हाथ में मेरी भूख है/लेकिन रोटी नहीं,/मेरे हाथ में नंगापन है/लेकिन लँगोटी नहीं/मेरे हाथ में मेरी जहालत है/लेकिन नहीं किताब/मेरे इन सवालों का माँगे कौन जवाब? इस स्थिति को तभी समझा जा सकता है जब वह दर्द हमने भोगा हो। क्योंकि बगैर भोगे दलित वर्ग के प्रति वह संवेदना लाना थोड़ा मुश्किल है, कहते हैं न घायल की गति घायल जाने। दीपक जी के इस संग्रह का दलित इस वर्ग वैषम्य की पराकाष्ठा की वजह से ही सवर्ण वर्ग और शोषक वर्ग को कहता है कि 'तू अछूत बनकर देख.../तू अछूत बनकर देखेगा/देखेगा तो देगा दिखाई/बार–बार/तेरे मुख से उच्चरित/'वसुधैव कुटुम्बकम' का नारा/नौटंकी का खेल/जा, अपने घर जा/अपने चार बच्चों में से किसी एक बच्चे के माथे पर/काला टीका लगा,/उसका नाम 'बुद्धू' रख, उसे बात–बात पर दुत्कार,/ उसे 'कमीन' कहकर पुकार/साधन–सुविधाओं के बँटवारे में/गैर–बराबरी का उसके साथ/करके बरताव देख/फिर अपने उस बच्चे का ताव देख!'

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि दीपक जी

का यह संग्रह दलित समाज को वैचारिक आधार पर संगठित करके सामन्ती ब्राह्मणी शोषण, उत्पीडन और जातिगत भेदभाव से मुक्ति के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है। उनके इस संग्रह की कविताएँ दलित समुदाय से जुड़कर उनके साथ आत्मीय संबंध बनाकर और उनसे मिले जीवनानुभवों को पकडकर रचनात्मक स्तर तक ले जान में कामयाब हुई हैं। उनकी समस्याएँ पाठकों को आश्वस्त करती नजर आती हैं। इस संग्रह की कविताएं दलित की समस्याओं को, उनके विभिन्न पक्षों को, विविध आयामों में अभिव्यक्त करने की ईमानदार कोशिश है। साथ ही विषम राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक परिवेश में दलित, शोषित, निम्नवर्ग एवं उपेक्षित वर्ग की शोषणजन्य पीड़ा तथा शोषण मुक्ति के हेतु उनमें प्रस्फुटित संघर्षशील दलित चेतना की अभिव्यक्ति दीपक जी के इस संग्रह में बखूबी देखी जा सकती है। बेगार के विरुद्ध समय–समय पर दलित वर्ग में जो प्रतिक्रियाएँ हईं उनका प्रतिबिंब भी उनके संग्रह में प्रतिबिम्बित होता है। इसमें दलितों के प्रति अपनी सहानुभूति ही नहीं व्यक्त की गई है अपितु उनके प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया गया है। इसमें सवर्ण मानसिकता और दलित मन–स्थिति के मूल मर्म और गर्हीत प्रभाव को समझकर उसे उसकी ही जमीन पर धराशायी किया है।

इस संग्रह की कविताओं में श्रमशील मानवता का चित्रण है। इस संग्रह के माध्यम से दीपक जी ने वर्ग वैषम्य, संघर्ष और दबाव तथा मूल्यों के ह्रास का अहसास तीव्रता से कराया है, और अपने रचनात्मक चिंतन द्वारा जीवन निर्माण के लक्ष्य को व्यंजित किया है। नव निर्माण के प्रति अपनी सजगता को ध्वनित किया है, उनकी कविताएँ जीवन के इतिहास को भोगे हए यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं।

स्वानभूति की प्रगाढ़ता, मार्मिक मानवीय संवेदन और दारुण त्रासदी की सच्चाइयों के सम्मुच्य से अनुस्यूत इस संग्रह को आँखों देखा वृतांत भी कह सकते हैं। स्मृतियों का कोलाज कुछ भी कह सकते है लेकिन भोग्यमान भयावह यथार्थ से इंकार नहीं कर सकते। अभी तक आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की बात की जाती थी, लेकिन दीपक जी के इस संग्रह की कविताएँ यथार्थोन्मुख आदर्शवादी स्वरूप लिए आत्मालाप और संवाद की कविताएँ हैं, जिसमें वास्तविकता और व्यावहारिकता का ध्यान भी रखा गया है।

यह संग्रह भाव–पक्ष और कला–पक्ष दोनों ही दृष्टियों से नयापन लिए हुए है। विषय–वस्तु बेहद रोचक है और शैली अत्यंत प्रभावशाली।

देवेन्द्र दीपक सदैव से ही प्रयोगधर्मी रचनाकार रहे हैं। हर बार उनकी रचनाएँ पाठक को चकित करने की मंशा के साथ प्रकाशित होती रही हैं। यह संग्रह पाठक को बिल्कुल ही एक नए जगत में ले जाता है। इस संग्रह की कविताओं में गहन अन्तर्वेदना है, भावों के ज्वार के पीछे विचारों की गहनता है तथा कोरी भावुकता के स्थान पर गंभीर बौद्धिकता है। उन्होंने यथार्थ को विश्लेषित करने और शोषण के आतंक को साक्षात करने के लिए रहस्यमय और भय की पद्धति न अपनाते हुए उसमें अपनी सामाजिक–राजनीतिक समझ को आद्यन्त कायम रखा है। उनका यह संग्रह चुनौतियों, सवालों और समस्याओं से भरा हुआ है। उनकी कविताओं में नाटकीय तत्वों का समावेश उनकी प्रमुख विशेषता है।।

वस्तुतः इस संग्रह से उम्मीद बँधती है कि दलितों की आवाज को जनमानस तक न केवल पहुंचाने बल्कि समाज के सभी वर्गों में अस्पृशीय मानसिकता को बदलने में कामयाब होगा, एवं दलित साहित्य के क्षेत्र में भी इसका पर्याप्त आदर और सम्मान होगा।

चरोरे पाड़ा, बड़ा बाजार, तहसील रोड
सबलगढ़, जिला–मुरैना–476229 (म.प्र.)

पुस्तक : मेरी इतनी सी बात सुनो : कविता संग्रह।
लेखक : डॉ. देवेन्द्र दीपक, भोपाल।
प्रकाशक : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली।
संस्करण : प्रथम 2016

पत्र–पत्रिकाएँ इतिहास निर्माण करने वाला काम करती रही पर हमने इनका डोक्यूमेंटेशन नहीं किया, यह काम डॉ. रूपचंद गौतम जी ने कर दिखाया : वामन मेश्राम

समाचार

– साक्षी गौतम, नई दिल्ली

मैं यह बात स्पष्ट कर दूँ कि मैं कोई लेखक नहीं हूँ, साहित्यकार भी नहीं हूँ पर कई पत्र–पत्रिकाओं का संपादक जरूर हूँ। पत्रकारिता के जानकार डॉ. रूपचंद गौतम जी है। शायद ही बहुत कम व्यक्ति हमारे समाज में होंगे जिन्होंने पत्रकारिता में डाक्टरेट किया होगा। मेरी जानकारी में ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है। मैं ऐसा मानता हूँ कि आंदोलनों का प्रचार–प्रसार करने के लिए पत्र–पत्रिकाओं का होना बहुत जरूरी है। इनके बगैर हम लोग आंदोलन का बहुत ज्यादा विस्तार नहीं कर सकते हैं। ज्योतिबा फूले से लेकर बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने जो कुछ भी आंदोलन किए उनका प्रचार–प्रसार करने के लिए निकाली गई पत्र–पत्रिकाएं इतिहास निर्माण करने वाला काम करती रही पर हमने इनका डोक्यूमेंटेशन नहीं किया। यह काम डॉ. रूपचंद गौतम जी ने करके दिखाया। यह एक मौलिक काम है। अब इसका उपयोग कोई भी आंदोलनकारी कर सकता है। ये शब्द कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे बामसेफ के राष्ट्रीय अध्यक्ष मा. वामन मेश्राम ने डॉ. रूपचंद गौतम द्वारा लिखित पुस्तक 'अम्बेडकर जनसंचार' के विमोचन के बाद चर्चा में कहे।

यह चर्चा बयान टी.वी. द्वारा गाँधी शांति प्रतिष्ठान, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, आईटीओ, नई दिल्ली में 4 अप्रैल, 2021 को तालियों की गड़गड़ाहट के साथ सम्मपन्न हुई। अपनी बात को आगे बढाते हुए मा. मेश्राम साहब ने कहा कि हमारी बहुत बड़ी कमी यह रही कि हम इतिहास निर्माण का कार्य करते रहे, पर इतिहास लेखन का काम नहीं किया, उसे डॉ. गौतम जी ने किया। आप खुद अंदाजा लगा सकते हो कि कितना बड़ा इनका यह काम है? मैं तो हैरान हो गया कि डॉ. गौतम को इस कार्य को करने में दस साल लग गये। मैं इस बात को बखूबी समझ सकता हूँ कि गौतम जी ने 10 साल का अपना मूल्यवान समय इस काम के लिए लगाया। इसका आप अंदाजा स्वयं लगा सकते है। उसके बाद भी वे बड़ी विन्रमता से कहते हैं कि यह कार्य अभी अधूरा है। मैं इस कार्य को पूर्ण करने के लिए डॉ. गौतम को शुभकामनाएं देता हूँ। सस्ते रेट पर किताब छपें इसके लिए भी मैं सहयोग करने को तैयार हूँ।

इलाहाबाद हाईकोर्ट से आए वरिष्ठ अधिवक्ता एडवोकेट गुरु प्रसाद मदन ने कहा कि मराठी भाषा में 'मूकनायक' समाचार पत्र को प्रकाशित करके बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने जनसंचार को गति दी थी पर यह गति भाषा के आधार पर सीमित थी।' आदि हिन्दू' आंदोलन का केन्द्र कानपुर को बनाया तथा यहीं से वर्ष 1924 में स्वामी अछूतानंद हरिहर ने 'आदि हिन्दू' मासिक समाचार पत्र प्रकाशित किया। सही मायने में 'आदि हिन्दू' समाचार–पत्र आदि हिन्दू आंदोलन का मुखपत्र था। समाज निर्माण में समता, स्वतंत्रता एवं बंधुता की स्थापना करना ही 'आदि हिन्दू' का मूल उद्देश्य था। स्वामी अछूतानंद के आंदोलन का इतना अधिक प्रभाव था कि देश में आदि द्रवण, आदि तमिल, आदि आन्ध्रा, पंजाब में मंगूराम मूंगोवालिया, पश्चिमी बंगाल में नामो शूद्रा, महाराष्ट्र में आदि हिन्दू के रूप में व्यापक प्रभाव डाला। स्वामी जी के बाद मुंशी हरिप्रसाद टम्टा ने 'समता' समाचार पत्र अल्मोडा से प्रकाशित किया। डॉ. अम्बेडकर के बाद उनके अनुयाईयों ने हैंडबिल, पोस्टर, बुकलेट, पत्र–पत्रिकाएं एवं स्मारिकाएं प्रकाशित की। मान्यवर कांशीराम ने अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जाति एवं अल्पसंख्यकों को एकत्र

करके बहुजन समाज बनाया। इस समाज की जाग्रति के लिए अनेक पत्र–पत्रिकाओं का उन्होंने प्रकाशन किया। उनके बाद अनेक लोगों ने पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित कीं। समय के आधार पर उनके शीर्षक बदलते रहे।

अम्बेडकर जनसंचार का पहला भाग परंपरागत जनसंचार पर है, दूसरा भाग उत्तर प्रदेश की पत्र–पत्रिकाओं पर है, तीसरा भाग दिल्ली की 77 पत्र–पत्रिकाओं पर केन्द्रित है, चौथा भाग बिहार, राजस्थान, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ पर है, पाँचवा भाग स्मारिकाओं पर है, छठा भाग रिपोर्टिंग पर है, सातवा भाग भाषा और विचार पर है, आठवा भाग शोधात्मक दृष्टि पर केन्द्रित है, नौवा भाग पचास पत्रकारों पर है जिसमें ज्योतिराव फुले, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, मुंशी हरिप्रसाद टम्टा, लक्ष्मी देवी टम्टा, मोहनदास नैमिशराय से लेकर नई पीढ़ी के पत्रकारों में मनोज अंतानी जैसे पत्रकारों को डॉ. गौतम ने रेखांकित किया है। इसके लिए गौतम जी बधाई के पात्र है।

बौद्ध दार्शनिक प्रो. एस. सी जोशी ने कहा कि जितने मेरे अबेडकरी मिशन के साथी हैं वो 'अम्बेडकर जनसंचार' के 9 खंडों को जरूर खरीदें। ये इतिहास की धरोहर हैं। जिन साथियों ने बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचार को लेकर पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित की, आज उन सबका नाम इतिहास में दर्ज हो गया। इसलिए इस किताब को आप जरूर खरीदें। आठ–सात हजार रूपया कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। डॉ. गौतम ने जितनी मेहनत इस किताब में की है वो काबिले तारिफ है और इस रूप में ये किताब अनमोल है। इसकी कीमत नहीं लगाई जा सकती क्योंकि ये अनमोल किताबें हैं। यह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। किताबें हमारी धरोहर होती है।

वरिष्ठ पत्रकार मोहनदास नैमिशराय ने कहा कि मैं सबसे पहले डॉ. गौतम को बधाई देता हूँ। मुझे बहुत खुशी हो रही हैं। आज गुरु से आगे शिष्य निकल गया। मुझे यह कहते हुए बहुत अच्छा लग रहा है। असल में गुरु से आगे जब शिष्य निकलता है तो गुरु को बहुत खुशी होती है। जो काम गौतम जी ने किया है वह बहुत अच्छा है। मील का पत्थर है। इस पर हमें गर्व करने की बात है। हमें इन किताबों को खरीदकर पढ़ना चाहिए। गौतम जी ने इस काम को करने की कितनी तपस्या की होगी इसका आप अंदाजा स्वयं लगा सकते है क्योंकि मैं स्वयं एक शोधार्थी रहा हूँ।

पुस्तक के लेखक डॉ. रूपचंद गौतम ने कहा कि शोध जब भी किया जाता है तो निश्चित रूप से परेशानियाँ तो आती ही हैं। स्वामी जी के अखबार को खोजने के लिए मैं पता नहीं कहाँ–कहाँ घूमा? घूमते–घूमते मैं इलाहाबाद जा पहुँचा। जब जाकर के मुझे 15 दिसम्बर 1927 का 'आदि हिन्दू' अखबार मिला। 'अम्बेडकर जनसंचार' बीती हुई सदी का अम्बेडकरी अनुयाईयों द्वारा प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं का संग्रह है पर अभी यह अधूरा है। प्रदीप अम्बेडकर ने कहा कि मैं डॉ. रूपचंद गौतम को बधाई देना चाहता हूँ। जो समाज बोल नहीं सकता है उनकी आवाज को उठाने का काम मूकनायक ने किया। विचारों को फैलाने का काम हमारी पत्र–पत्रिकाएं ही कर रही है। इनको लिपिबद्ध करने का काम डॉ. गौतम जी ने किया।

हॉल पूरी तरह से भरा हुआ था। कोरोना को देखते हुए मास्क व सेनेटाइज की विशेष तौर पर व्यवस्था की गई थी। हॉल के अंदर एकैडमिक पब्लिकेशन का स्टाल भी था जिस पर अम्बेडकर जनसंचार के 9 भागों की प्रतियाँ लागों ने लगी देखी और प्रकाशक को ऑर्डर भी मिले। स्टाल पर साक्षी गौतम की पुस्तक साँस्कृतिक रिपोर्टिंग व उत्तराखंड की वर्तमान पत्रकारिता भी उपलब्ध थी। कार्यक्रम में उपस्थित सिद्ध गोपाल सागर, पवन गौतम, अशोक कुमार, कैलाश चन्द्र, सुदीप गौतम, अर्चना अंतानी, आर. के. कैन, आर. के. सिंह, डॉ. राजेश कुमार, मुकेश कुमार

सैनी, दिलीप अम्बेडकर, शेखर पंवार आदि गणमान्य व्यक्तियों को समता आवाज के लिए मनोज अंतानी, बयान टी. वी. के लिए सुदीप गौतम, डैमोक्रेटिव भारत के लिए महेश वर्मा तथा एम.एन. टी.वी. के लिए रविन्द्र सिंह ने स्मृति के लिए अपने कैमरे में रखा। इस तरह के कार्यक्रम समय–समय पर होते रहने चाहिए ताकि लेखक और पाठकों के बीच संवाद बना रहे। बाहर से आए हुए आगंतुको का मान्यवर एम. बी. राठौर ने धन्यवाद दिया।

बायें से आयु. एच.सी. बौद्ध, गुरुप्रसाद मदन, डॉ. रूपचंद गौतम मोहनदास नैमिशराय, वामन मेश्राम और प्रदीप अम्बेडकर

समय के साथ चलते हुए

संस्मरण

– डॉ. दयानन्द बटोही

इलाहाबाद में 1954 जुलाई में पिताजी ने 7वीं में नाम तब हरिजन आश्रम, अब ईश्वर शरण आश्रम में लिखा दिया। 20 रुपये महीना वजीफा बिहार सरकार से मिलता था। उसी में खाना था। पिताजी की हालत अच्छी नहीं थी। हम पांच भाई , दो बहनें थे। मैं सबों में बड़ा था। मेरे प्रिंसिपल श्याम बिहारी निराजी थे। वे नेक दिल इंसान के साथ अच्छे शिक्षक थे। शिक्षकों में कर्णसिंह ज्ञानी, मौलवी साहब, वी.एन.पी. शर्मा छात्रावास अधीक्षक भी थे और काष्टकला पढ़ाते थे उमेशचन्द्र श्रीवास्तव।

आश्रम के देखरेख में थे शंकर शरण, जज साहब मुंशी ईश्वर शरण के पुत्र थे। वहां से 1958 में मैट्रिक पास कर, वहीं इन्टर कॉलेज में नाम लिखाया और 1962 में इंटर कर, बी.ए. इवनिंग क्रिश्चियन कॉलेज इलाहाबाद में 1962 से 1964 तक पढ़ा। उस समय मेरा वहां कोई परिचित नहीं था इसलिए होस्टल नहीं मिला। फिर एक लॉज में रहने लगा जिसमें एक मेस की व्यवस्था मिश्राजी नाम के व्यक्ति चलाते थे। वहां जाने पर कहा 15 रुपये खाने का और सीट रेन्ट 12 रुपये लगेंगे। यद्यपि यह मेरे लिए भारी रकम थी लेकिन सोचा कुछ स्टाइपेड से और कुछ ट्यूशन पढ़ाकर पूरा कर लूंगा लेकिन उन्होंने पूछा आप इंटर कहां से पास किये हैं? मैंने बताया हरिजन आश्रम से।

उनकी भौंहें तन गयी और कहने लगे–अच्छा आपका खाना यहीं रूम में भिजवा देंगे। ऊपर काहे के लिए जाइयेगा। तब तक मैं समझ नहीं पाया और दो चार दिन तक खाना खाता रहा कमरे में। बाद में दो–चार के बाद मसीह नाम का व्यक्ति ने पूछा – दयानन्द खाना कहां खाते हो ? मैंने बताया – मिश्राजी ने कहा कि खाना कमरे में भेज देंगे। कमरे में खा लीजिएगा। इसलिए कमरे में ही खाना आता है। उन्होंने कहा–आप जब पैसा बराबर देते हैं तो मेस में खाइये और तब मैंने मिश्राजी से कहा–मैं खाना खाऊंगा ऊपर मेस में।

उनकी हालत खराब होने लगी वे काले थे और भी चेहरा बदरंग होने लगा। वे कहने लगे नीचे क्या दिक्कत है जब और सब्जी, दाल, रोटी, चावल लगेंगे, ज्यादा भेज दूंगा। मैंने कहा नहीं मैं ऊपर ही आज से मेस में ही खाऊंगा। अब तो उन्हें लगा दलित होकर ऊपर सबके साथ कैसे खायेगा।

मैं सीधे ऊपर जाकर बैठ गया और कुछ छात्र खा रहे थे बैठकर मेस में। मिश्रा ने कहा–नीचे खाना भेज रहा हूँ। मैंने कहा–नहीं आज मैं यहीं खाऊंगा। तू–तू मैं–मैं की बातें होने लगी। मुझे खाना नहीं दिया गया। मैं अपमानित हो नीचे चला आया और कहा आज से खाना आपके हाथ का नहीं खाऊंगा यह और भी उन्हें लगा कि एक दलित इतना कह सकता है। वे कहने लगे यहां तो मेस में ऊँची जाति के ही छात्र खा सकते हैं।

मैंने कहा–आपको क्या लगता है मैं नीच हूँ। मेरे 35 रुपये और 12 रुपये नीच नहीं हैं।

उन्हें और भी तिलमिलाने की नौबत आयी। उसमें एक रमकी सिंह यादव नाम का छात्र था। वह सिगरेट पिलाने लगा और मुझे कहने लगा क्या होगा, नीचे ही खाइये। मैंने कहा सिगरेट मैं नहीं पीता तथा ऊपर खाने में क्या दिक्कत है। खाना नहीं दिया गया। मैं अपमानित

होकर नीचे आ गया। मसीह ने कहा अभी बर्तन फेंकता हूँ उस काले व्यक्ति पर। फिर मैं कॉलेज में आ गया और अपने गुरुजनों से मिलने ईश्वर शरण आ गया। वहां उमेशचन्द्र श्रीवास्तव, राजाराम सिंह, कर्णसिंह ज्ञानी शिक्षकों से मिला। उन्होंने कहा–छुआछूत घोर अपराध है लेकिन तुम्हें पढ़ना है इसलिए पढ़ाई करो छोड़ो इन बातों को।

मेरे सामने कई तरह की बातें आ जा रही थी। मैं घर का बड़ा लड़का, फिर पिता की साधारण नौकरी और फिर बिहार से दूर इलाहाबाद। इसी को सोचते–सोचते कहां आ गया और कहां अपने गांव के अम्बिकाजी से मिला। वे कायस्थ पाठशला में इंटर में पढ़ते थे। उन्होंने कहा–यहीं आ जाइये तो वहीं रहने लगा। वहां भी वे लोग कुर्मी थे लेकिन लाला यानी कायस्थ के नाम से रहने लगे। जाति का दर्द वहां भी हरियाने लगा। एक दिन कमेसरा जो गांव से खाना बनाने के लिए लाये थे वे लोग। उसने कहा अम्बिका जी भी कुर्मी है। दयानन्द दलित दुःसाध हैं। दुसाध को पासवान भी कहते हैं। मैं कॉलेज से लौटा था अम्बिका ने कहा चलिये डेरा बदल रहे हैं। मैंने कहा क्यों। उन्होंने कहा– कमेसरा ने बता दिया हम कुर्मी है। मैंने कहा सही बोला है तो क्या हुआ। उन लोगों ने कहा–हम लोग कायस्थ के नाम पर है। मैंने कहा–ऐसा क्यों मैं तो साफ बता दिया हूँ दुसाध हूँ, पासवान हूँ। उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। आप लोग बेकार ही छिपा रहे है जाति। उन्होंने कहां कुर्मी को हेय दृष्टि से देखते हैं। मैंने कहा हम लोग उन्हें किराया दे ही रहे हैं। फिर क्या दिक्कत हैं। फिर भी डेरा बदल ही दिये।

बी.ए. पास कर एम.ए. में इलाहाबाद विश्व विद्यालय हिन्दी विभाग में लिखा नाम। डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. रघुवंश, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. हरदेव बाहरी मेरे प्रिय गुरु रहे। वाष्टोचि प्रेमचंद पढ़ाते थे लेकिन हर समय तनाव में रहते थे और भेदभाव मानते थे। इसीलिए एम.ए. के बाद पी–एचडी हेतु मेरे साथ काफी बेरुखी का व्यवहार करते रहे। वाइस चांसलरी आर. के. नेहरू के लिखने के बाद भी उन्होंने मुझे रिसर्च करने नहीं दिया। मैं दो वर्षों तक उनके पीछे–पीछे घूमता रहा। लेकिन उन्होंने साफ शब्दों में कहा–मैं जब तक हूं, दलितों को शोध नहीं करने दूंगा, मैं फटेहाल तो था ही और भी परेशानियों से घिरने लगा।

मेरे साहित्यिक मित्रों में गिरधर राठी, प्रमोद सिन्हा, नीलाम, अमर गोस्वामी, नगेन्द्र चौरसिया, प्रणव कुमार बद्योपाध्याय थे।

पी–एचडी मिल तक बनी रही लेकिन जाति–पाति के चलते वाष्टोचि ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शोध करने की अनुमति नहीं दी। मैं अपने मित्र मण्डली में जाति का भाव ऊपर से नहीं देखा भले ही अंदर से।

बलिया जिले के आद्या प्रसाद द्विवेदी। वे एक वर्ष सीनियर थे लेकिन वे छुआछूत के विरोधी थे। पी–एचडी करने की तलब बनी रही। फिर मैं अपने गांव वादी नालंदा बिहार लौट गया और बी.एड. करने लगा। वहां भी एक तिवारी शिक्षक थे, घोर जातिवादी।

हुआ यह कि अनुवाद के लिए उन्होंने अपनी एक रचना को दिया। मैंने अनुवाद तो कर दिया लेकिन उन्होंने पूछा आपका टाइटल क्या है? मैंने कहा दयानन्द प्रसाद (अब बटोही) उन्होंने कहा प्रसाद क्या लाला है आप? मैंने कहा दलित हूं पासवान हूं। उनका चेहरा फक हो गया वे प्रेक्टिकल में मुझे 1 नम्बर दिये। मैं बहुत घबरा गया कि 1 नम्बर क्यों दिये जबकि मैंने अच्छा प्रोजेक्ट दिया था। खैर बी.एड़ कर लिया और शिक्षक हो गया। डीवीसी चन्द्रपुरा में। बाद में वहां इन्टर कॉलेज खुला। एजुकेशन ऑफिसर पाण्डे थे पी.एन.। वे जाति–पाति के पुजारी थे। उन्होंने मुझे कुछ अपशब्द भी कहा तो मैं बिगड़कर उन्हें मैंने भी कुछ कहा–यद्यपि वे हमारे अधिकारी थे लेकिन मरता क्या न करता। डग–डग पर जाति का कांटा बिछाकर आप हजार वर्ष पहले से दौड़ रहे थे साथ, मुझे कहोगे तो समय लगेगा ही।

12 वर्षों तक लिखा–पढ़ी के बाद मेरा कॉलेज में हुआ। फिर बाद में हिन्दी अधिकारी भी बना। ओपन वेकेनेंसी की 360 अभ्यर्थी को पूरे देश में बुलाया गया था उसमें मेरा चुनाव हुआ। वहां भी डीजीएम जगतार सिंह ने मुझे घोर अपमानित किया। मेरा सीसीआर खराब लिखा। मैंने चैलेंज कर ठीक कराया। यह सब जाति का दर्द अभी भी झेलना पड़ता है मुझ जैसों को।

साहित्य यात्रा
ई.जी.–8, चन्द्रपुरा, बोकारो–828403
मोबा. 9955437549

कहानी

बिखरे मोती

– डॉ. विकास पाटील

आषाढ़ का माह था। रात के 8 बजे थे। सड़क पर घना अंधेरा छाया हुआ था। घमासान बारिश के साथ तेज हवा बह रही थी। प्रकाश या बिजली का नामोनिशान नहीं था। दो पाँव बड़ी तेजी के साथ सफर कर रहे थे। शायद वह बेचैन लग रहे थे। उन्हें किसी जगह या मंजिल की तलाश थी। दो पाँव के ऊपर का पूरा शरीर भीगा हुआ था। शर्ट, पैंट और उसके शरीर पर लिपटी हुई बैग तेज बारिश के आगे हारी हुई थी। उसकी बैग को देखकर लगता था कि वह किसी दफ्तर में नौकरी करता होगा। उसका पूरा शरीर थका हुआ दिखाई दे रहा था। चेहरे पे गहरी चिंता। फिर भी किसी बेचैनी के कारण घने अंधेरे और बारिश की बूँदों को चीरते हुए वह आगे बढ़ रहा था।

अचानक उसके पैर ठिठक गए। कुछ पल आराम करते हुए बिना आवाज किये धीरे–धीरे आगे बढ़ने लगे। सघन अंधेरे में भी उसके कदम बिना झीझक के आगे बढ़ रहे थे। ऐसा लग रहा था कि वह बरसों से उस जगह से परिचित हो, उस जगह के एक–एक अंग से वाकिब हो। दो मंजिली मकान के किवाड़ के पास दोनों पाँवों ने विश्राम किया। हाथों ने दीवार का सहारा लिया। आँखे मंजे हुए तीरंदाज ने छोडे हुए तीर की तरह तिमिर को चीरती हुए मकान में फैल रही थी। अंधेरे में एक मोमबत्ती जलते हुए दिखाई दे रही थी। जहाँ धुँआ उठ रहा था वहाँ मोमबत्ती रुक गई और स्थिर हुई। उसके प्रकाश में कमरे का धुंधला–सा चित्र स्पष्ट हो रहा था। कुर्सी से धुँआ आ रहा था जिसमें एक बुजुर्ग सिगरेट पी रहा था जो नजरों के उलटी दिशा में बैठा था, जिसके कारण उनका चेहरा दिखाई नहीं दे रहा था। उनके सम्मुख बैठी हुई औरत स्पष्ट दिखाई दे रही थी। उसके गले में पहनी हुई मोती की माला मोमबत्ती की रोशनी में चमक रही थी। चेहरे पर मासूमीयत थी पर जीवन की बड़ी पूँजी खोने का भाव दिखाई दे रहा था।

मुन्ना घर आ गया होगा ना?शब्द के तीर अंधेरे को भेदते हुए आए। जो बूढी औरत ने कहे थे। जिसमें मुन्ना के प्रति प्यार था। बाहर के माहौल के कारण उसे चिंता सताएँ जा रही थी।

कितने बजे है?कुर्सी पर बैठे हुए बुढ़े आदमी ने पूछा।

करीब 8.30 बजे होंगे। बूढी औरत ने कहा।

हाँ, अभी–अभी घर पहुँच गया होगा। पर हमें उससे क्या लेना–देना। कौन है वह हमारा। जिंदगी भर खून–पसीने का दीया जलाकर उसे रोशनी दी। लड़खड़ाते हुए पाँवों को आधार दिया। उसकी सारी अभिलाषाएँ पूरी करते हुए शिक्षा, हिम्मत, दुनियादारी के तौर–तरीके साथ मुक्त गगन में विहार करने के लिए प्यार के पंख दिए। उन पंखों में इतनी जान आई की वह हमारे जिंदगी से ओझल हो गया। न उसे अपने लोगों की याद है न ही अपने जमीन की। कुर्सी से धुँवे के साथ क्रोध की ज्वालाएँ निकल रहीं थी।

हाँ, हाँ.....मुझे पता है आपका यह झूठा क्रोध। आप चेहरे पर कितना भी क्रोध दिखाए। पर मैं जानती हूँ मुन्ना आपके आँखों का तारा है। मुझे आज भी याद है। तुम दोनों की शरारतें, करामतें। नाक में दम कर रखा था। मुन्ना और तुम्हारी एक टीम थी। मेरे पीठ पीछे न जाने क्या–क्या गुल खिलाते थे। वह तो मैं बयान नहीं कर सकती। मेरे सामने ही नजरों के इशारों से मुझे बेवखूफ बनाया करते थे। छुट्टी के दिन तो मुझे साँस लेने की फुर्सत भी नहीं मिलती थी। घर को खेल का मैदान करते–करते कबाड़ खाना बना देते थे। मैं मैदान की रखवाली, सफाई कर्मी और मालकिन थी। फिर भी आप दोंनो बाज नहीं आते थे। जब मैं डंडा लेकर आती आप मुन्ना को कंधों पर बिठाकर, दौड़ लगाते। मैं आपका पीछा करती। मुन्ना खुशी के मारे चिल्लाता

'आओ माँ आओ हमे पकड़ो। आप अपनी रफ्तार बढ़ाते।

'अनुसुया छोडो यह बाते'। बुजुर्ग ने कहा।

क्यों छोड दूँ, आप दोनों ने मुझे बहुत भगाया है। जिसकी वजह से आज मेरी घुटनों में दर्द है। याद है आपको एक दिन मैं आप दोनों का पीछा करते हुए बगीचे में फिसलकर गिर पड़ी। आप दोनों भागकर मेरे करीब आए, आपने मेरा सिर उठाकर अपनी जाँघों पर रखा। मेरे प्रति आपके चेहरे पर चिंता और दिल में प्यार का अथाह सागर था। आपकी आँखों की नहर से मुझे साफ दिखाई दे रहा था। मुन्ना तो मुझे चिपक कर रो रहा था। उसके आँसू देखकर ऐसा लग रहा था कि मेरा दर्द आँखों द्वारा बह रहा हो। दर्द के मारे मुझ से चला नहीं गया। आपने जला–भूना खाना बनाया था। आपने मुझे उठाकर कमरे में लाकर सुलाया। आपने आधा जला–भूना खाना बनाया था। वह खाना मुन्ना अपने नाजुक हाथों से मुझे खिला रहा था। रोते हुए उसने वादा किया कि आज के बाद हम तुम्हें सताएँगें नहीं और आपने मुन्ना को जन्मदिवस पर भेट की हुई मोती की माला उसने मुझे भेट की।

हाँ, 'मालूम है मुझे आज भी वह माला तुम पहनती हो।' बुजुर्ग ने कहा।

पता है आपको, आप दोनों में जो भी खिचडी पकती थी। वह मुन्ना मुझे बता देता था। मैं जान–बूझकर अनजान बनती थी। लेकिन मैं पागल थी, हाँ सच में क्योंकि सबकुछ जानकर भी मैं अनजान बन रही थी। यह बात अलग है कि मेरी आँखों में देखकर आप सहजता के साथ भाप लेते थे।

हाँ, अनुसुया मैं तुरंत पहचानता था क्योंकि तुम्हारी आँखे कभी झूठ नहीं बोलती थी। कितना सुखी परिवार था हमारा। मेरे सभी दोस्त मुझसे जलते थे। हँसता–खेलता परिवार, तुम, मैं होनहार और काबिल बेटा मुन्ना। तीनों अपनी–अपनी जगह पर रोशन और चमकदार थे। तुम गृहस्थी, मैं अपने दप्तर और मुन्ना अपने क्षेत्र में। फिर भी सभी में एक डोर थी जो हमें एक–दूसरे को बाँधती थी। प्यार और विश्वास की। लेकिन अनुसुया तुम्हारी आँखे आजकल झूठ बोलती है। सिगरेट बूझाते हुए बुजुर्ग ने कहा।

बिल्कुल ठिक कहा आपने। पर मैं क्या करु बेटे के गृहस्थी के लिए यह जरुरी था। जिसकी खुशी के लिए उम्र भर परिश्रम किए, कष्ट उठाए, उसे यूँ ही बिखरते नहीं देख सकती। हाँ, पूर्वग्रह दूषित मुन्ना की पत्नी के मन में हम प्यार और विश्वास जगा न सके। उसकी बातों और कार्यों का डंक मैं सहती गई क्योंकि मुझे आशा थी कि मुन्ना की पत्नी सुधा में प्यार और विश्वास का दीया जलेगा। अपनापन, निस्वार्थ प्यार तथा समर्पण, विश्वास और बुर्जुगों के प्रति अनुराग परिवार की नींव है। यह बातें उसके पल्ले नहीं पड़ी। दिन–प्रतिदिन के बेवजह आपसी टकराव से मुन्ना न जाने किस मानसिक स्थिति से गुजर रहा था, यह आपने महसूस किया था। जिस पौंधे को बढ़ाने के लिए दोनों ने आजीवन कष्ट उठाए। उसके सुखी और समृद्ध जीवन के लिए जिंदगी की सारी पूँजी लगाई। उसे बेबस नहीं देख सकते थे। हम तो सूखे हुए निरस पेड़ के पत्ते हैं न जाने कब गिर जायेंगे। हमारी सभी इच्छाएँ खत्म हुई है। सिर्फ आँखों में आस है कि मुन्ना खुश रहे।

बिजली के आगमन से पूरा कमरा रोशन होता है। अनुसुया मोमबत्ती को बूझाने उठती है तभी गले में पहनी हुई मोतियों की माला कुर्सी में अटक कर टूट जाती है। मोती फर्श पर बिखरने लगते हैं। उसे समेटने के लिए अनुसुया प्रयास करती है।

कमरे में नजर लगी हुई आँखों से प्यार और श्रद्धा के मोती गिरने लगते हैं पर बारिश की बूँदों में लुप्त होते हैं।

हिंदी विभाग,
आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज, आष्टा
भ्रमण ध्वनि – 9975170910

छत्रपति शाहूजी महाराज

आरक्षण के जनक राजर्षि छत्रपति शाहूजी महाराज कोल्हापुर नरेश का जन्म 26 जून 1874 ई. को कोल्हापुर रियासत के एक गांव में हुआ था। कोल्हापुर रियासत की विरासत संभालने के लिए आपको किसान परिवार से गोद लिया गया था, इसलिए आपको, '' कुर्मी कुलभूषण'' की उपाधि से भी नवाज़ा गया।

छत्रपति शाहूजी महाराज का शासनकाल छत्रपति शिवाजी की चौथी पीढ़ी में आता है। छत्रपति शाहूजी महाराज भारत के गांवों में व्याप्त सामाजिक अपमान, गैर बराबरी व छुआ छूत से भलीभांती वाकिफ थे इसलिए इस सामाजिक अपमान के लिए जिम्मेदार इस देश की उर्ध्वाधर खड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकने का भाव उनके मन में बचपन से ही विद्यमान था, खास करके उन्हें जब छत्रपति शिवाजी के राज तिलक समारोह में 16 जून 1674 को रायगढ़ में पुरोहित गंगभट्ट द्वारा बाएं पैर के अंगूठे से तिलक करके अपमान करने की घटना का ज्ञान हुआ तो उनका मन वर्ण व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था और मनुस्मृति द्वारा निर्धारित सामाजिक कानूनों के ख्लिाफ विद्रोह से भर गया था, यह घटना शाहूजी महाराज के हृदय में एक शूल की तरह हमेशा चुभती रहती थी।

एक बार शाहूजी महाराज के स्नान करते वक्त पुरोहित ने अपमान जनक मंत्रोच्चारण किया। शाहूजी महाराज स्वयं विद्वान थे, जब उन्हें पुरोहित द्वारा उच्चारित किए जा रहें अपमान जनक मंत्रों का भान हुआ तो उन्होंने पुरोहित को भारी डांट पिलाई और ब्राह्मणी षडयंत्र से अपने समाज को बाहर लाने के लिए छटपटाने लगे।

छत्रपति शाहूजी महाराज महात्मा ज्योतिराव फुले के द्वारा शिक्षा के लिए किए गए संघर्ष से भी प्रभावित थे, इसलिए उन्होंने राजाज्ञा जारी की कि कोल्हापुर रियासत में अब किसी भी शूद्र को शिक्षा ग्रहण करने के बदले कानों में पिघला शीशा नहीं भरा जाएगा, जीभ नहीं काटी जाएगी, मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाएगा बल्कि उन्हें अपने बच्चों को शिक्षा ग्रहण कराने के बदले राजकोष से छात्रवृत्ति के रुप में इनाम दिया जाएगा। उनहोंने नारी और शूद्रों के शिक्षा ग्रहण करने को बढ़ावा दिया। जगह-जगह स्कूल व कॉलेज खुलवाए, छात्रावास का निर्माण कराया।

छत्रपति शाहूजी महाराज ने समाज में व्याप्त छुआछूत के कलंक को समाप्त करने के लिए गंगाराम कांबले नामक अछूत नौजवान के द्वारा जगह-जगह चाय की दुकान और होटल खुलवाए , गंगाराम कांबले ने कहा कि -राजन ! मैं महार जाति का अछूत हूं, कौन मेरे होटल पर चाय पीने व खाना खाने आएगा ?

छत्रपति शाहूजी महाराज ने गंभीर होकर गंगाराम कांबल का हौंसला अफजाई करते हुए कहा कि '' गंगाराम कांबले जाओ होटल खोलो, चाय की दुकानें खोलो छत्रपति शाहूजी महाराज पूरे राजदरबार के साथ तुम्हारे होटल पर खाना खाने, चाय पीने आएगा जो नहीं आएगा उसको मंत्री पदों से और नौकरियों से बर्खास्त कर दिया जाएगा।

छत्रपति शाहूजी महाराज ने छुआछूत के खिलाफ एक जन-आन्दोलन चलाने का काम किया । समाज में जागरुकता और चेतना लाने का काम किया और जब शूद्रों में पढ़े-लिखे नौजवानों की संख्या काफी तैयार हो गई तो 26 जुलाई 1902 को उन्होंने अपने कोल्हापुर रियासत की सरकारी नौकरियों से शूद्रों के लिए 50% आरक्षण घोषित किया और उसे लागू किया।

उन्होंने चामराज वाडियर मैसूर के राजा, सयाजीराव गायकवाड़ बड़ौदा के राजा तथा इन्दौर के होल्कर राजा को भी समझाया कि आप अपने यहाँ भी आरक्षण की व्यवस्था को लागू करों।

-साभार

कबीर ही सबसे प्रखर और मुखर वेद विरोधी स्वर है। विरोध और कर्म काण्डी पुरोहितवादी दर्शन के निषेध की यह परंपरा बौद्ध, जैन चावार्क आदि के साथ ही गुरुनानक और बाबा साहेब अम्बेडकर से चली आ रही है। परिवर्तनकामी कबीर की यही सबसे बड़ी देन है कि उन्होंने अपने कर्म और मर्म की देशज भाषा में जन जागरण के ऐ से युग का सूत्रपात किया जो अंग्रेजी परस्त मध्यवर्ग के नव जागरण से एकदम अलग और अनोखा था और सामाजिक-आध्यात्मिक न्याय के क्षेत्र में कबीर का वही जन-जागरण आज भी उतना ही सक्रिय और कारगर है।

–कमलेश्वर के लेख से साभार

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिविजन 204/2018-2020 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से मालवा ग्राफिक्स, 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार